शोध सरोवर पत्रिका

आरती, वषुतक्काटु, तिरुवनंतपुरम-695 014, केरल राज्य।

RNI No. KERHIN/2017/70008 ISSN No.2456-625 X

वर्ष 10 अंक 37

त्रैमासिक हिन्दी शोध पत्रिका 10 जनवरी, 2026

पीयर रिव्यू समिति :

प्रो.(डॉ.) शांति नायर

प्रो (डॉ.) के श्रीलता

प्रो.(डॉ.) बी.अशोक

मुख्य संपादक
डॉ.पी.लता

प्रबंध संपादक
डॉ.एस.तंकमणि अम्मा

सह संपादक
प्रो.सती के
डॉ.एस.लीलाकुमारी अम्मा
श्रीमती वनजा पी

संपादक मंडल
डॉ.बिन्दु सी.आर
डॉ.षीना यू.एस
डॉ.सुमा आई
डॉ.एलिसबत जोर्ज
डॉ.लक्ष्मी एस.एस
डॉ.धन्या एल
डॉ.कमलानाथ एन.एम
डॉ.अश्वती जी.आर

सूचना: लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

इस अंक में

संपादकीय		3
काव्य में नारी-विमर्श : एक अवलोकन	: डॉ. राजश्री श्रीवास्तव	4
भारतेंदु के नाटकों में कविताओं की भूमिका	: डॉ.रोहित आर्य	8
साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में युवा सशक्तिकरण	: डॉ.शिवकुमार सी एस हड़पद	12
'चलता हुवा लावा' उपन्यास में चित्रित पारिवारिक यथार्थ	: नीतू एस एन	15
जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविताओं में अभिव्यक्त प्रकृति	: पूजा कुशवाहा, डॉ.विनोद कुमार	19
नारी-अस्मिता: समकालीन हिन्दी कविताओं के विशेष संदर्भ में	: दिलीप सिंह राजपूत	24
बंगाली- मलयालम अनुवादेतिहास एवं परिसंवादः परंपरा का प्रभाव	: डॉ. मोहनन वी टी वी	28
सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण में 'हम न मरब'	: सुस्मिता पी पणिक्कर	30
उत्तराखण्ड का जाड़-भोटिया समुदाय: एक सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन	: उदय प्रकाश	32
वसीयत -प्रकृति और वृद्ध जीवन का प्रतीकात्मक मिलन	: प्रीतिका एन	38
विद्यासागर नौटियाल के कथा साहित्य में मार्क्सवादी चेतना	: हिमांशु विश्वकर्मा	41
कबीर का साहित्य और वर्तमान समाजः एक तुलनात्मक अध्ययन	: रचना देवी, डॉ.शिव प्रकाश त्रिपाठी, डॉ. राजेश कुमार चौधरी	46

यू जी सी से अनुमोदित पत्रिका

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मैलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ हिंदी यूनिकोड मंगल फॉन्ट में टंकित होनी चाहिए। लेख के प्रारंभ में लेख का सार अपेक्षित है जो अधिकतम 150 से 200 शब्दों के मध्य हो। सार में लेख लिखने का उद्देश्य अवश्य परिलक्षित होना चाहिए। आलेख के अनुरूप 5 से 7 'की वर्ड' (बीज शब्द) भी लिखें। लेख को यथोचित उपशीर्षकों में विभाजित करके लिखें। लेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य दें। शब्द-सीमा 2500 से 3000 शब्दों की हो। आलेख के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची ए.पी.ए. के प्रारूप में हो। लेख भेजते समय अपने नाम, पता, फोन नंबर एवं लेख का शीर्षक ई-मेल में अवश्य लिखें। इस आशय का एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत कर दें कि लेख मौलिक है, अप्रकाशित है, भविष्य में इससे संबंधित किसी भी विवाद के लिए लेखक उत्तरदायी होंगे।

रचना के अंत में पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता अंकित करें। संक्षिप्त जीवन-परिचय और फोटो भी भेजें।

डॉ.पी.लता
संपादक
शोध सरोवर पत्रिका

मूल्य : एक प्रति रु.100/-

वार्षिक शुल्क रु.400/-

पत्रिका के संबंध में अधिक जानकारी केलिए संपर्क करें - डॉ.पी.लता (संपादक, शोध सरोवर पत्रिका; मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी), आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफीस लेन, ई-28, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य।

फोन : 9946679280, 9946253648, 0471-2332468

ई-मेल : akhilbharatheeyhindiacademy@gmail.com

संपादकीय

स्व.प्रो.डी.तंकप्पन नायर

बहुमुखी प्रतिभा संपन्न प्रो.डी.तंकप्पन नायर अनुवादक और पत्रकार के रूप में अधिक विख्यात हुए। आपने खुद कई अनुवाद किए और दूसरे अनुवादकों से मिलकर भी कई अनुवाद किए। श्री के जी बालकृष्ण पिल्लै से मिलकर श्री तोमस जोर्ज की 50 कविताओं का मलयालम से हिंदी में अनुवाद किया, जो 'हृदय की वाणी' नाम से संकलन रूप में प्रकाशित हुआ (2014, प्रकाशक-जवाहर पुस्तकालय, मथुरा)। इन दोनों अनुवादकों ने मिलकर आधुनिक मलयालम भाषा के पिता तथा मलयालम के प्राचीन कवित्रयों– तुंचत्तु रामानुजन एषुत्तच्छन, चेरुश्शेरी नंपूतिरि और कुंचन नंपियार– में भक्त कवि तुंचत्तु रामानुजन एषुत्तच्छन कृत 'हरिनाम कीर्त्तनम्' का व्याख्या सहित हिंदी में अनुवाद किया। यह अनुवाद पहले 'केरल ज्योति' मासिक पत्रिका (प्रकाशक– केरल हिंदी प्रचार सभा) में 2013-2014 वर्ष में धारावाहिक और बाद में पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ।

श्री.के.एल.पॉल की मलयालम कहानियों के हिंदी अनुवादों के दो संकलन प्रकाशित हैं। इन दोनों में एक अनुवादक प्रो.डी.तंकप्पन नायर जी हैं। इनमें 'के.एल.पॉल की कहानियाँ' संकलन के संपादक भी तंकप्पन नायर जी हैं। श्रीमती माधविक्कुट्टी (कमला सुरय्या; मलयालम और अंग्रेज़ी की कथा लेखिका) की मलयालम कहानी 'पालपायसम्' का नायरजी का हिंदी अनुवाद 'खीर' 'केरल ज्योति' पत्रिका (अंक - सितंबर 2009) में प्रकाशित हुआ।

हिंदी के लब्धप्रतिष्ठ कथाकार और पत्रकार हिमांशु जोशी (1935-2019) के नायर जी द्वारा डॉ.एम.एस.राधाकृष्ण पिल्लै से मिलकर किया अनुवाद है 'आरण्यकं' (2010, प्रकाशक – परिधि प्रकाशन, तिरुवनंतपुरम)। हिंदी के प्रसिद्ध लेखक रामकुमार भ्रमर के 'पहला सूरज' उपन्यास का मलयालम अनुवाद आपने 'अस्तमिक्कात्त सूर्यन' नाम से डॉ.टी.शांतकुमारी से मिलकर किया (2009, चिंता पब्लिकेशन, तिरुवनंतपुरम)।

प्रो.डी.तंकप्पन नायर जी अनुवादक ही नहीं, आलोचक भी थे। 'मनुष्य के रूप' (यशपाल), 'अग्निबीज' (मार्कण्डेय), थकेपाँव (भगवतीचरण वर्मा), 'अकेली आवाज़' (राजेन्द्र अवस्थी), 'निर्मला' (प्रेमचन्द) आदि उपन्यासों; 'आंजोदीदी' (उपेन्द्रनाथ अश्क), 'आधे अधूरे' (मोहन राकेश), 'आषाढ़ का एक दिन' (मोहन राकेश), 'अग्निशिखा' (रामकुमार वर्मा), 'अशोक का शोक' (वंशीधर श्रीवास्तव), 'जय-पराजय' (उपेन्द्रनाथ अश्क), रक्षाबंधन (हरिकृष्ण प्रेमी), सन्यासी (लक्ष्मीनारायण मिश्र), 'न्याय की रात' (चंद्रगुप्त विद्यालंकार) जैसे नाटकों की छात्रोपयोगी समीक्षाएँ आपनी लिखीं। 'प्रवाद पर्व' खंडकाव्य (नरेश मेहत्ता) की भी आपने आलोचना लिखी। इन सबका 'जनता बुक स्टाल, तिरुवनंतपुरम' ने प्रकाशन किया।

श्री.जे.नंदकुमार के 'स्वामी विवेकानन्द' पर लिखे मलयालम लेख का नायरजी का हिंदी अनुवाद 'केरल ज्योति' पत्रिका के नवंबर, दिसंबर (2013) तथा जनवरी (2014) अंकों में धारावाहिक प्रकाशित हुआ।

नायरजी के अन्य अनुवाद हैं – डॉ.इंदिरा बालचंद्रन की रचना 'गायत्री मंत्रम् सर्ववेद सारं' (मलयालम) का हिंदी अनुवाद, चन्द्रशेखरन तंपानूर के 'श्रवण त्रयम्' मलयालम उपन्यास का हिंदी अनुवाद, पी.रविकुमार के 'एम.डी.रामनाथन' मलयालम खंडकाव्य का हिंदी अनुवाद आदि।

नायरजी अनुवादक और आलोचनक ही नहीं, वैयाकरण भी थे। उनसे लिखे गये व्याकरण ग्रंथ हैं – हिंदी व्याकरण तथा रचना – भाग 1 और भाग 2, सरल हिंदी व्याकरण, ए हाण्ड बुक ऑफ हिंदी ग्रामर, हिंदी ग्रामर आदि। भाषा पंडित और वैयाकरण होने के कारण आप सफल अनुवाद भी कर सके। अनुवाद कार्य में अपने परिचय के आधार पर अन्य दो लेखकों

से मिलकर आपसे तैयार की गयी रचना है 'अनुवाद माला', जो चार भागों में प्रकाशित हुए। प्रकाशक है, 'केरल हिंदी प्रचार सभा'। 'राजा रविवर्मा चरित' महाकाव्य 'केरल ज्योति' पत्रिका में क्रमशः छप रहा था कि आपका आकस्मिक निधन हुआ।

नायरजी साहित्य-सेवा केलिए कई पुरस्कारों से विभूषित हुए हैं, जैसे – यू.पी. हिंदी संस्थान का 'सौहार्द पुरस्कार', महाराष्ट्र साहित्य अकादमी पुरस्कार, साहित्य कलानिधि पुरस्कार, केरल सरकार का प्रथम अनुवाद पुरस्कार आदि। आप 'गाँधी स्मारक निधि', 'हिंदी विद्यापीठ' तथा 'केरल हिंदी साहित्य अकादमी' से विशिष्ट हिंदी सेवा केलिए सम्मानित हुए।

प्रो.डी.तंकप्पन नायर जी हिंदी में एम ए उपाधि हासिल करके बिशप मूर कॉलेज, मावेलिक्करा (केरल राज्य) में हिंदी विभाग के अध्यापक नियुक्त हुए। वहाँ विभागाध्यक्ष के पद से सेवानिवृत्त होने के बाद 'केरल हिंदी प्रचार सभा' के स्नातकोत्तर केन्द्र के प्राचार्य बने। सन् 2012 से प्रस्तुत सभा की मुख पत्रिका 'केरल ज्योति' के मुख्य संपादक का पद अलंकृत करना शुरू किया। पत्रकार या संपादक के रूप में विख्यात भी हुए। 24 सितंबर 2025 को मृत्युपर्यंतद आपने बड़े समर्पित भाव से अपना यह कर्तव्य निभाया। 10.8.2025 को आपने लेटर हेड में अंतिम अभिलाषा भी लिखी थी कि दाह संस्कार के बाद कोई मरणोपरांत कर्म न करें। स्वर्गीय प्रो.डी.तंकप्पन नायर जी को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ।

डॉ.पी.लता

संपादक, शोध सरोवर पत्रिका

(मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी)।

काव्य में नारी-विमर्श :एक अवलोकन

◆ **डॉ. राजश्री श्रीवास्तव**

सार- नारी ईश्वर का एक अनमोल उपहार है। परंतु स्त्री का अस्तित्व हमेशा हाशिये में रहा है। स्त्री-विमर्श क्या है? स्त्री-विमर्श को लेकर शिक्षाविदों के क्या विचार रहे हैं? साथ ही वर्तमान समय में स्त्री विमर्श की क्या आवश्यकता है? इस विषय पर चर्चा करने का प्रयास इस लेख में किया गया है।

बीज शब्द- स्त्री विमर्श, हिन्दी काव्य, नारी शोषण, नारी अस्तित्व बोध।

नारी ईश्वर की श्रेष्ठतम कृति है। परंतु स्त्री और पुरुष में कौन श्रेष्ठ है इस संबंध में निरंतर चिंतन रहा है। (प्रज्ञा प्रमेय)। प्राचीन ग्रन्थों में समान रूप से नर और नारी का उल्लेख हुआ है। हिन्दू समाज में प्राचीन काल से ही स्त्रियों का स्थान आदर्शात्मक और मर्यादायुक्त था। नारी का स्थान पुरुषों की ही भाँति समानता का था। वे अपनी इच्छा के अनुरूप कार्य कर सकती थीं। उन्हें शिक्षा, विवाह और संपत्ति में समान अधिकार प्राप्त था। स्त्रियों के प्रति समाज में स्वाभाविक निष्ठा और श्रद्धा विद्यमान थीं। वैदिक युग से लेकर मध्य युग तक आते- आते अनेक उतार-चढ़ाव आए। परिणामस्वरूप स्त्रियों की स्थिति में भी परिवर्तन आए, जिससे पुरुषों की तुलना में स्त्रियों को समाज में श्रेयस्कर स्थान नहीं मिला। इसके मुख्य कारण राजनीतिक अस्थिरता और सामाजिक संकीर्णता ही थीं। वैदिक युग में शिक्षा के क्षेत्र में भी स्त्रियों को पुरुषों के ही समकक्ष स्थान प्राप्त था। पुरुषों की ही भाँति वे भी ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए शिक्षा ग्रहण करती थीं और स्वयं को विदुषी बनाती थीं। जो स्त्रियाँ एकनिष्ठा के साथ विद्याध्ययन में रत रहती थीं उन्हें ब्रह्मवादिनी कहा जाता था। लोपामुद्रा, सिक्ता, विश्वआरा, घोषा, गार्गी, सुलभा, मैत्रेयी आदि ऐसी विदुषी महिलाएँ थीं जो कि विद्वत्ता में ही नहीं याज्ञिक क्षेत्र में भी अग्रणी थीं, जिनकी प्रतिष्ठा वैदिक ऋषियों के ही समान थी। उन्हें वेदाध्ययन और यज्ञ सम्पादन का पूर्ण अधिकार प्राप्त था। इनकी विद्वत्ता के आगे बड़े- बड़े विद्वान भी नतमस्तक थे। जहाँ तक नर और नारी के बीच श्रेष्ठता का संबंध है नारी संसार की

अनमोल निधि है। भारतीय संस्कृति और साहित्य के अनुसार स्त्री को देवी का स्थान प्राप्त है। वह माता पार्वती का रूप है। इस तथ्य के अनुसार स्त्री को पुरुष से श्रेष्ठ माना जाना चाहिए, किंतु स्त्री की महानता है कि वह पुरुष को स्वयं से श्रेष्ठ मानती है।

एक लंबे समय से नारी-विमर्श चर्चा में है, किन्तु नारी-विमर्श हमेशा ही देह- विमर्श का प्रश्न बनकर रह गया है। इस पुरुषवादी समाज में नारी की स्थिति, समाज में बंधे हुए, शोषित होती हुई और अपनी अस्मिता के लिए लड़ती हुई नारी के रूप में ही रह गयी है।

स्त्री विमर्श- स्त्री-विमर्श पर चर्चा करने से पूर्व हमें सबसे पहले यह समझना होगा कि विमर्श क्या है?

विमर्श का अर्थ- 'मानस हिन्दी कोश' के अनुसार विमर्श का अर्थ है सोच-विचार कर तथ्य या वास्तविकता का पता लगाना तथा गुण-दोष आदि की आलोचना या मीमांसा करना।

अर्थात् किसी विषय पर सोच-समझकर तथ्य के साथ उसके गुणों और दोषों को ध्यान में रखकर उससे संबन्धित विभिन्न दृष्टिकोणों और विचारों का समग्र अध्ययन करना।

नामवर सिंह के अनुसार- "विमर्श का मतलब किसी एक वस्तु के बारे में लोगों की बात-चीत करने के तरीके या सोचने की पद्धति से है। ये तरीके मिल-जुल कर लोगों की सामान्य धारणा को बनाते है।"[1]

विमर्श हमें वस्तु स्थिति को जिस रूप में है उसी रूप में स्वीकार करने के स्थान पर उसके वैकल्पिक रास्तों को खोज करने के लिए प्रेरणा प्रदान करता है। इसी खोज के अंदर से नवीन विचारधारा का जन्म होता है।

स्त्री विमर्श से तात्पर्य- स्त्री-विमर्श का तात्पर्य है कि स्त्री को केंद्र में रखकर उसकी समस्याओं को साहित्य में स्थान देना एवं उन समस्याओं को समझकर उनका तर्कों के साथ समाधान प्रस्तुत करना।

रोहिणी अग्रवाल के शब्दों में स्त्री-विमर्श है- "स्त्री को केंद्र में रखकर समाज, संस्कृति, परंपरा एवं इतिहास का पुनरीक्षण करते हुए स्त्री की स्थिति पर मानवीय दृष्टि से विचार करने की अनवरत प्रक्रिया।"

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'स्त्री-विमर्श' केवल किसी एक पक्ष का पक्षधर नहीं, बल्कि वह पक्षधर है स्त्री के उस अतीत का, जो उसने भोगा है और उस भविष्य का जिसकी पीड़ा उसकी आने वाली पीढ़ी भोगेगी।

स्त्री-विमर्श एक नवीन विचारधारा को समाज के सम्मुख प्रस्तुत करता है, जो स्त्री के हितों को ध्यान में रखकर उसे समानता का अधिकार और अपने अस्तित्व को समाज के समक्ष उजागर करने की प्रेरणा देता है। लिंग के आधार पर पितृसत्तात्मक समाज में जहाँ सारे नियम, कानून, वर्चस्व पुरुषों के हैं वहाँ स्त्री का कुछ भी नहीं है। स्त्री एक ऐसा प्राणी बन चुकी है जो पुरुषवादी समाज की कठपुतली बनकर निरीह प्राणी सा जीवन व्यतीत कर रही है। स्त्री के स्वभाव, उसके मन और उसकी संवेदनाओ को समझने के लिए स्त्री-विमर्श एक महत्वपूर्ण दृष्टि है। स्त्री-विमर्श कोई संस्कार नहीं है, न ही कोई विचारधारा है। यह स्त्री के पारंपरिक मानदंडों को तोड़ने का पहल है जिसमें स्त्री को समानता के अधिकार,सम्मान और स्वतन्त्रता प्राप्त हो सके। इसके लिए पुरुषों की मानसिकता में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है।

स्त्री-विमर्श ने सदियों से चले आ रहे पितृसत्तात्मक नियमों और सिद्धांतों को चुनौती दी है, क्योंकि वे सिद्धान्त पुरुषों के द्वारा बनाए गए हैं। स्त्री-विमर्श स्त्री के अधिकारों एवं दायित्वों के प्रति उसे जागरूक करता है। डॉ. शीला रजवार के शब्दों में "जब तक नारी केवल नारी है व्यक्ति नहीं तब तक वह पुरुष की दासता के लिए अभिशप्त है।"[2]

यदि स्त्री-विमर्श से तात्पर्य स्त्री-मुक्ति और स्त्री-अस्मिता से है तो "जिस दिन समाज स्त्री शरीर का नहीं उसकी मेधा और उसके श्रम का मूल्य देना सीख जाएगा सिर्फ उस दिन स्त्री मनुष्य के रूप में स्वीकृत होगी।"[3]

स्त्री-विमर्श से हमारा तात्पर्य यह बिलकुल भी नहीं है कि पुरुष समाज से हमारी कोई शत्रुता या प्रतिस्पर्धा है। यह एक स्वस्थ मानवीय सोच है। इस संबंध में मृणाल पांडे का विचार सराहनीय है "नारी-विमर्श स्त्रियाँ को बृहत्तर समाज से अलग-थलग रखकर देखने और हर क्षेत्र में पुरुषों के खिलाफ उन्हें प्रोत्साहित करने का दर्शन नहीं है। यह तो समग्र दृष्टिकोण है।[4]

आज सम्पूर्ण मानवीय समाज का स्वरूप बदल रहा है। समय बदल चुका है और साथ ही स्त्री की स्थिति

भी, आज वह घर की चहारदीवारी में कैद अबला नहीं है। वह पुरुषों के पैरों की जूती मात्र नही है, जिसे उसने जब चाहे पहना और उतार दिया। न ही कोई खिलौना है जिसे जब तक मन किया खेला और जब मन भर गया तो तोड़ डाला। आज वह अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक हो चुकी है। अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों और अन्यायों के प्रति आवाज़ उठाने की शक्ति उसमें आ चुकी है, स्त्री-विमर्श स्त्री की इसी जाग्रति का विमर्श है। वह अपने अस्तित्व को पुरुष जीवन से कम नहीं मानती है। उससे बराबरी का दावा करती है। महादेवी वर्मा के अनुसार-"उनसे कैसे छोटा है, मेरा यह भिक्षुक जीवन"[5]

मानव जीवन के सर्वांगीण विकास में नर और नारी का समान रूप से योगदान है। नारी के बिना संसार की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। नारी हमेशा ही पुरुष की प्रेरणा रही है। वह निराशा के क्षणों में उसके अंदर आशा की किरण जगाती है। प्रसाद जी ने अपनी 'कमायनी' में इसका उत्कृष्ट उदाहरण दिया है। मनु जब हताश और निराश होते हैं तो श्रद्धा उनके पास आती है, कहती है कि

" में गूँज रहा जयगान॥"[6]

श्रद्धा मनु के मन पर छाए कुहासे के बादलों को दूर करने के लिए यह भी कहती है-

"अरे! तुम इतने हुए अधीर।
हार बैठे जीवन का दाँव,
जीतते मरकर जिसको वीर॥"[7]

स्त्री सदैव ही पुरुष की सहगामिनी रही है। उसने हर-पल हर-क्षण पुरुष का उत्साह वर्द्धन ही किया है। फिर चाहे वह माँ के रूप में हो, पत्नी के रूप में, बहन के रूप में, पुत्री के रूप में या प्रेयसी के रूप में, नारी के सभी रूप अपने आप में परिपूर्ण हैं।

हिन्दी काव्य साहित्य में आदिकाल से ही नारी के अलग- अलग रूप हमारे समक्ष प्रस्तुत होते रहे हैं। ऋगवेद में वह वाक् देवी के रूप में स्वयं को प्रस्तुत करती है और उद्घोष करती है- 'अहमराष्ट्री' अर्थात् 'मैं ही स्वामिनी हूँ'।

पुराणों में तो स्त्रियों को पुरुषों से भी ऊपर का स्थान दिया गया है। वे मातृत्व गुणालंकृत नारियाँ हैं। उनकी संतानों को उन्हीं के नाम से अभिहित किया जाता है। कौसल्या सुत, देवकी नन्दन, यशोदा के लाल, कुंती पुत्र यहाँ तक कि कर्ण भी स्वयं को राधेय कहलाना ही पसंद करते थे। 'हनुमान चालीसा' की ये पंक्तियाँ इस बात का स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती हैं कि उस समय माता का स्थान पिता से कितना ऊँचा था।

"अंजनि-पुत्र पवन सुत नामा॥"

रीतिकाल में स्त्री मात्र भोग्या और विलास की वस्तु थी। इस युग के कवियों ने अपने आश्रय दाता राजाओं को प्रसन्न करने के लिए स्त्री के प्रिया और रसिक रूप को ही प्रस्तुत किया। भारतेन्दु युग में नारी की समस्या से लेकर उसकी महिमा तक का वर्णन मिलता है। द्विवेदी युग में नारी में वेदना, ममता, करुणा, त्याग और दायित्व की मिली-जुली अभिव्यक्ति दिखाई देती है। छायावादी युग में नारी केवल प्रियतमा के रूप तक ही सीमित न रहकर देवी, माँ और साथ चलने वाली सहगामिनी के रूप में भी वर्णित हुई है। जयशंकर प्रसाद ने नारी को न केवल पुरुष के समतुल्य माना है, बल्कि उसे अधिक ऊर्जावान और शक्ति स्वरूपा भी माना है। प्रसाद जी की 'कामायनी' में नारी को पुरुष से भी श्रेष्ठतर बताया गया है। 'कामायनी' में नारी को बुद्धि और हृदय का प्रतीक माना गया है, जिस कारण इड़ा और श्रद्धा के सामने मनु का चरित्र बौना दिखाई पड़ता है। प्रसाद जी की नारी विषयक दृष्टि ने नारी जाति को गौरवान्वित कर दिया है।

प्रगतिवादी काव्य नारी को देवी से अलग उसे मानवी रूप में प्रस्तुत करता है। बंकिमचन्द्र चटर्जी,रवीन्द्रनाथ टैगोर, मैथलीशरण गुप्त, सूर्यकांत त्रिपाठी,'निराला', सुमित्रानन्दन पंत आदि ने भारतीय नारी की महिमा को आवाज़ प्रदान की है।

आधुनिक काल के काव्य में उसके मादक और मोहक सौन्दर्य का वर्णन अनेक विद्वानों ने किया है, जिसमें ज़्यादातर उसकी विवशता ही दृष्टिगोचर हुई है। नारी की इस विवशता पर जब राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त का ध्यान आकृष्ट हुआ तो उन्होनें कहा-

"अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।"[8]

शारीरिक और आत्मिक सौंदर्य दोनों ही आकर्षण के केंद्र हैं। नारी के सौन्दर्य का जो रूप प्राचीन काल में वर्णित था वह आज वर्तमान में क्यों नहीं हो सकता है?

आधुनिक काल जन-जागरण का युग है।नारी के देवी रूप की अभिव्यक्ति ही इस संसार को उच्च शिखर पर ले जा सकती है। 'मनुस्मृति' के अनुसार-

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।"[9]

अर्थात् जहाँ पर नारी की पूजा होती है वहीं पर देवता निवास करते हैं।

आधुनिक काल के कवि जयशंकर प्रसाद ने अपनी कृति 'कामायनी' में भारतीय नारी का आदर्श रूप प्रस्तुत किया है, जिसने सम्पूर्ण नारी जाति को ही धन्य कर दिया है।

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग-पग-तल में,
पीयूष स्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुंदर समतल में"[10]

स्त्रियों की दयनीय और शोचनीय दशा को देखकर विवेकानंद जी कहते हैं – "स्त्रियों की दशा सुधारे बिना जगत के कल्याण की कोई संभावना नहीं है, पक्षी के लिए एक पैर से उड़ना संभव नहीं है।"

सुशीला टाकभौरे के काव्य संग्रह में स्त्री के जीवन की वास्तविकता को दर्शाती एक रचना है, जिसमें उनका आक्रोश स्पष्ट रूप से दिखाई देता है-

"माँ–बाप ने पैदा किया था गूंगा,
परिवेश नें लंगड़ा बना दिया,
चलती रही परिपाटी पर,
बैसाखियाँ चरमराती हैं,
अधिक बोझ से अकुलाकर,
विस्कारित मन हुंकारता है,
बैसाखियों को तोड़ दूँ।"[11]

यदि काव्य साहित्य के माध्यम से नारी-विमर्श पर चर्चा करते हैं तो हमें परिलक्षित होता है कि इस विमर्श ने पारंपरिक ढाँचे को तोड़कर नारी के संबंध में नयी चेतना को प्रासंगिकता के साथ प्रस्तुत किया है। स्त्री-विमर्श पितृसत्तात्मक समाज के अशोभनीय व्यवहार की मानसिकता पर विचार करता है। स्त्री-विमर्श स्त्रियों पर थोपे गए पुरातन विचारों पर बात करता है।

वर्तमान समय में स्त्री-विमर्श स्त्री को एक मानवी के रूप में प्रस्तुत करते हुए उसको समानता के अधिकार देने की बात पर बल देता है। वास्तव में इस समाज का, राष्ट्र का और विशेष रूप से इस विश्व का कल्याण तभी हो सकता है जब नारी को समानता का अधिकार प्राप्त हो।

संदर्भ

1 राजेन्द्र यादव, संपादक- हंस, 'नामवर सिंह के हस्ताक्षर', अगस्त 2004, पृ.105

2 डॉ.शीला राजवार, 'स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य में नारी के बदलते संदर्भ', दिल्ली इस्टर्न बुक लिंकर्स, पृ.74

3 तसलीमा नसरीन, 'औरत के हक में', वाणी प्रकाशन, 1995, पृ.99

4 मृणाल पांडे, 'परिधि पर स्त्री', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1998, पृ.5

5 महादेवी वर्मा,'यामा', लोक भारती प्रकाशन, 1939, पृ.19

6 जयशंकर प्रसाद,'कामायनी', श्रद्धा सर्ग, भारती भण्डार, पृ.57

7 वही, पृ.55

8 मैथलीशरण गुप्त,'यशोधरा', साहित्य प्रेस, चिरगाँव, झाँसी, पृ.19

9 'मनुस्मृति' 3/56, (अनुवाद प.चगरजा प्रसाद द्ववेदी), नवल ककशोर प्रेस, लखनऊ, 1917, पृ.75

10 जयशंकर प्रसाद,'कामायनी', लज्जासर्ग भारती भण्डार, 1955, पृ. 19

11 सुशीला टाकभौरे,'विद्रोहिणी' कविता संग्रह, इतिहास बोध प्रकाशन, 2000, पृ. 142.

◆सहायक प्रवक्ता
शिवांशु सुशील महाविद्यालय
सुहापारा, बहराइच, उ.प्र. ।
फोन: 9149479925

भारतेंदु के नाटकों में कविताओं की भूमिका

♦डॉ.रोहित आर्य

शोध सार - आधुनिक हिन्दी नाटकों की शुरुआत भारतेंदु युग से हुई। भारतेंदु ने हिंदी में नाटकों का लेखन आरम्भ किया। भारतेंदु को संस्कार रूप में जो नाट्य परम्परा मिली उसमें अधिकांश गद्य और पद्य मिश्रित ब्रजभाषा नाटक आते हैं जो काव्यात्मक कथोपकथन कहे जा सकते हैं। इनमें नाटक के तत्वों का नितांत अभाव है। भारतेंदु ने इस कमी को पूरा किया और हिंदी साहित्य को हिंदी नाटकों के प्रथम चरण के रूप में भारतेंदु युगीन नाटक मिले। शोध की दृष्टि से भारतेंदु के नाटकों पर हिंदी साहित्य में बहुत काम हुआ है। प्रस्तुत शोध आलेख में भारतेंदु के नाटकों में व्यक्त कविताओं को शोध का आधार बनाया गया है। भारतेंदु के प्रायः सभी नाटकों में कविताओं का प्रयोग भारतेंदु ने किया है । इसी दृष्टि से शोध आलेख का विषय उभरकर सामने है। प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य है भारतेंदु के नाटकों में प्रयुक्त कविताओं की भूमिका को विश्लेषित तथा व्याख्यायित करना।

बीज-शब्द- नाटक, कविता, सामाजिकता, सामूहिकता, प्रदर्शनधर्मिता, संवादधर्मिता, युगीन चेतना आदि ।

शोध विस्तार - साहित्य की सबसे प्राचीनतम विधा के रूप में नाटक जाना जाता है। 'नाटक' साहित्य की अन्य विधाओं से अलग अपना विशिष्ट अस्तित्व रखता है। नाटक को पढ़ने के साथ - साथ देखा और खेला भी जाता है। यही विशिष्टता नाटक को साहित्य की अन्य विधाओं से अलग करती है। नाटक के विषय में कहा जाता है कि काव्य में नाटक सबसे अधिक रमणीय है। "काव्येषु नाटकम् रम्यम्।"[1] भारतीय चिंतन परम्परा में काव्य पर गहन एवं विस्तृत चर्चा की गई है। काव्य के दो भेद हैं - श्रव्य काव्य एवं दृश्य काव्य। दृश्य काव्य का संबंध नाटक से है। भावों का प्रकाशन और अभिनय की प्रधानता जिसमें होती है उसे 'रूपक' कहा गया है। संस्कृत में नाटक को रूपक कहा गया है और इसके दस भेद स्वीकार किए गए हैं। इसके अतिरिक्त रूपकों के अठारह और भेद गिनाए गए हैं जिन्हें उपरूपक कहा गया है। आचार्य धनंजय ने अवस्था के अनुकरण को नाटक कहा है। "अवस्थानुकृति नाट्यम्।"[2]

नाटक प्राय संवाद प्रधान होते हैं। संवादधर्मिता नाटक का प्राण तत्व कहा जाता है। भारतेंदु पूर्व और भारतेंदु युगीन नाटकों में संवादों के साथ - साथ कविताओं को भी रखा गया है। यह परंपरा हम भारतेंदु के बाद जयशंकर प्रसाद के नाटकों में भी पाते हैं। क्योंकि ब्रजभाषा के लम्बे प्रभुत्व के बाद एकदम से उसके प्रभाव से मुक्त हो जाना न नाटककारों के बस में था, न प्रेक्षकों के। लेखकों के साथ - साथ आम जन मानस भी कविता के लय और तुक का आदी था। यही कारण है कि भारतेंदु के नाटकों में संवादों और कविताओं का सुन्दर मिलन है, बिखराव नहीं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कविता को परिभाषित करते हुए लिखा है कि 'आत्मा की मुक्ति ज्ञान का परिचायक है, हृदय की मुक्ति रस की परिणति है, हृदय की मुक्ति के लिए कवि की वाणी जो शब्द-विधान करती है वह कविता कहलाती है।'[3] इस प्रकार कविता मनुष्य को संकुचित भावों से उठाकर स्वानुभूति के धरातल पर ले जाती है। भारतेंदु हरिश्चंद्र से पूर्व तक ब्रजभाषा में रचित जो नाटक हमें मिलते हैं, वे प्राय: काव्यात्मक प्रस्तुतियाँ ही कही जा सकती हैं। रीतिकालीन प्रभाव से युक्त ये नाटक दरबारी संस्कृति के अधिक निकट दिखाई देते हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने नाटकों की इस परंपरा को लोकधर्मी स्वरूप प्रदान किया। भारतेंदु ने नाटकों को नवजागरण की चेतना का माध्यम बनाया। युगीन परिवेश के अनुरूप नाटक लिखकर नाटक को दरबारों से निकालकर आम जनता से जोड़ा। यह ध्यातव्य है कि भारतेंदु के समय तक कविताएँ ब्रजभाषा में ही लिखी जाती थीं। उनके विषय प्रायः भक्ति एवं श्रृंगार ही होते थे।

आम जनमानस में कविताएँ बहुत अधिक

लोकप्रिय थीं। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने एक साथ दो काम किए। पहला, नाटक की सामाजिकता, सामूहिकता और प्रदर्शन-धार्मिकता को पहचानकर उसे युगीन चेतना से जोड़ा। दूसरा, नाटकों को और अधिक प्रभावी तथा जन चेतना के अनुरूप बनाने के लिए कविता की लोकप्रियता का प्रयोग अपने नाटकों में किया। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने लगभग अपने सभी नाटकों में कविताओं का प्रयोग किया है। यह कविता आज हिंदी नाटक का अभिन्न अंग है। अपने नाटकों में जो कविताएँ भारतेंदु ने लिखी हैं वे आज भी पाठकों एवं प्रेक्षकों को कंठस्थ हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटकों की कविताएँ उनके नाटकों का प्राण तत्व है। हिंदी में भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटकों पर विद्वानों ने बहुत गहनता से शोध कार्य किए हैं। भारतेंदु की विलक्षण प्रतिभा और युगीन सापेक्षता के कारण आज भी भारतेंदु हरिश्चंद्र शोध का विषय बने हुए हैं। भारतेंदु पर हुए शोध कार्यों में सबसे पहला विषय है भारतेंदु के नाटकों की संख्या और मौलिक तथा अनूदित नाटकों का निर्धारण। इस विषय पर विद्वानों में अभी भी मतभेद हैं। भारतेंदु का कौन-सा नाटक मौलिक है और कौन-सा नाटक अनूदित है, आज भी इस विषय में कोई अंतिम दावा नहीं किया जा सकता। सभी विद्वानों ने अपने - अपने शोध कार्य के अनुसार इसका निर्धारण किया है। प्रस्तुत शोध आलेख में भारतेंदु हरिश्चंद्र के मौलिक तथा अनूदित नाटकों के विवाद में न पड़कर भारतेंदु के उन नाटकों को आधार बनाया गया है जो युगीन परिवेश के अनुरूप है। वैसे तो भारतेंदु के लगभग सभी नाटक कहीं न कहीं युगीन चेतना के अनुरूप हैं, परंतु यहाँ उन नाटकों को लिया गया है जिनमें प्रयुक्त कविताएँ श्रृंगार एवं भक्ति से इतर राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक नवजागरणकालीन चेतना के अनुरूप हैं। भारतेंदु युग जन-जागरण, नवजागरण तथा आधुनिकता का पर्याय है। इसी दृष्टि से यहाँ भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटकों का चुनाव किया गया है। प्रयत्न यह किया गया है कि भारतेंदु के नाटकों में प्रयुक्त कविताओं के उन अंशों को अधिक से अधिक लिया जाए, जो अब तक प्रकाश की प्रतीक्षा में हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटकों में प्रयुक्त कविताओं के भावपक्ष को लिया है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटकों की कविताओं का शिल्प पक्ष एक अलग स्वतंत्र विषय के रुप में अपना अस्तित्व रखता है, इसलिए यहाँ केवल भाव एंव संवेदना पक्ष को हीं लिया गया है।

'सत्य हरिश्चंद्र' नाटक में भारतेंदु हरिश्चंद्र लिखते हैं कि "तनहिं बेची दासी कहवाई। मरत स्वामी आयुष बिनु पाई। करूँ न अधर्म सोचु जिय माहीं। 'पराधीन सपने सुख नाहीं।"[4] सत्य की परीक्षा में राजा हरिश्चंद्र ने स्वयं को परिवार सहित बेचा, राज्य का दान किया, पुत्र की मृत्यु को सहना पड़ा , चंडाल बनकर श्मशान में चांडाल कर्म किया, बावजूद इसके राजा हरिश्चंद्र ने सत्य का मार्ग नहीं छोड़ा। यहाँ भारतेंदु हरिश्चंद्र की नवजागरणकालीन चेतना सत्य के साथ जुड़कर अपने लक्ष्य स्वाधीनता से जा मिलती है और वे कह उठते हैं कि 'पराधीन सपने सुख नाहीं'। पराधीनता तो सपने में भी सुख नहीं दे सकती। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने राजा हरिश्चंद्र के सत्य के आग्रह को भारत की स्वाधीनता के लक्ष्य के साथ जोड़ दिया और भारतवासियों को स्वाधीनता के लिए प्रेरित किया। भरत वाक्य में भारतेंदु लिखते हैं कि "उपधर्म छूटे सत्य निज भारत गहै, कर दुख बहै। बुध तजहिं मत्सर, नारि नर सम होहिं, सब जग सुखलहै।।"[5] यहाँ 'सत्य निज भारत गहै', अर्थात् भारतेंदु हरिश्चंद्र ने ऐसे भारत का सपना देखा जहाँ सत्य की तथा अपने अस्तित्व की प्रधानता हो, जहाँ नारी नर के समान हो और चारों और सुख हो। भारतेंदु हरिश्चंद्र के स्वाधीन भारत की परिकल्पना में पराधीनता, असत्य तथा असमानता को कोई स्थान नहीं है। यह अपने आप में बहुत बड़ी बात है कि उस समय भारतेंदु हरिश्चंद्र की दूरदृष्टि नारी और नर में व्याप्त भेद को समाप्त करना चाहती थी। क्या आज हम भारतेंदु बाबू के सपने को पूरा करने का प्रयास नहीं कर रहे हैं? क्या आज देश का नेतृत्व नारी शक्ति को प्रणाम नहीं कर रहा है? क्या आज नारी नर के समान नहीं है? शताब्दियों पहले भारतेंदु जो लिख गए, हम आज भी उसी लक्ष्य

की प्राप्ति की ओर है। यही कारण है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र का लिखा आज भी प्रासंगिक है। 'भारत दुर्दशा' नाटक भारतेंदु हरिश्चंद्र की नवजागरण की चेतना का क्लासिकल उदाहरण है।

जागना और जगाना ही जागरण है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'भारत दुर्दशा' में वास्तव में जागरण का ही उदाहरण प्रस्तुत किया है। "जागो जागो रे भाई। सोअत निसि वयस गँवाई जागो जागो रे भाई। निसि की कौन कहै दिन बीत्यो काल राति चलि आई। देखि परत नहिं हित अनहित कछु परे बैरि बस जाई।। निज उद्धार पंथ नहिं सूझत सीस धुनत पछिताई।अबहूँ चेति, पकरि राखो किन जो कुछ बची बड़ाई।। फिर पछिताए कछु नहिं हवैहैं रहि जैहौ मुँह बाई।। जागो जागो रे भाई।।"[6] भारत भाग्य भारत को जगाना चाहता है परंतु भारत नहीं जागता। भारत भाग्य कहता है कि तुमने सोने में तो जीवन निकाल दिया और आज भी यही हाल है। भारतेंदु भारत भाग्य के माध्यम से नवजागरण कालीन विमर्श को वाणी देते हुए भारत भाग्य से कहलवाते हैं कि भारत, भारत दुर्देव के चंगुल में है। अब भी समय है यदि भारत समय रहते, भारत दुर्देव के वश से बाहर आ जाए तो अभी भी भारत को बचाया जा सकता है। दरअसल यह विमर्श भारत भाग्य और भारत के बीच न होकर भारतवासियों से है। उनकी कमियों और खामियों से है। वास्तव में भारतेंदु भारत भाग्य के माध्यम से सोए हुए भारतीय मानस की चेतना को जगाना चाहते हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र आगे लिखते हैं कि "सोइ भारत की आज यह, भई दुरदसा हाय। कहा करे कित जायँ नहिं, सूझत कछू उपाय।।"[7] जिस भारत का अतीत स्वर्णिम वैभव से भरा पड़ा है, यह वही भारत है जहाँ एक से बढ़कर एक विद्वानों का प्रादुर्भाव हुआ। आज उसी भारत की यह दशा देखकर क्या कहा जाए, कुछ कहा नहीं जा सकता। कहा जा सकता है कि भारत की ऐसी दुर्दशा ने भारतेंदु को 'भारत दुर्दशा' लिखने पर बाध्य किया।

भारत की दुर्दशा पर आँसू बहाने के बाद 'नीलदेवी' नाटक में भारतेंदु सीधे भारत के वीरों को अपने अतीत के गौरवशाली इतिहास से प्रेरणा लेकर शौर्य तथा वीरता से भर देते हैं। " चलु बीर उठी तुरंत सबै जय ध्वजहि उड़ाओ। लेहु म्यान सो खंग खीचि रनरंग जमाओ।। परिकर कसि कटि उठो धनुष पै धरि सर साधौ।। केसरिया बानो सजि सजि रनकुंकन बाँधो।।"[8] केसरिया रंग हमारी वीर गाथा का प्रमाण है। यह इतिहास है राजस्थान से लेकर महाराष्ट्र तक हमारे वीरों के बलिदान का। भारतेंदु नीलदेवी में यवनों को लक्ष्य करके सीधे - सीधे भारत की तात्कालिक दुर्दशा से उठकर वीरता और साहस की ज्योति जगाने का प्रयास करते हैं। हताशा और निराशा से आगे बढ़कर विजय की पताका लहराने की भारतेंदु हरिश्चंद्र घोषणा करते हैं- "छन महँ नासिहं आर्य नीच जवनन कहँ करि छय। कहुह सबै भारत जय भारत जय भारत जय।।" [9]

'अंधेर नगरी' नाटक के 'समर्पण' में भारतेंदु लिखते हैं कि "मान्य योग्य नहिं होता कोऊ कोरो पद पाए। मान्य योग्य नर ते, जे केवल परहित जाए।।" केवल पद पाने मात्र से कोई मान पाने का अधिकारी नहीं हो जाता। जो दूसरो के हित में लगा रहता है वही वास्तव में मान के योग्य हैं। भारतेंदु युग में पद पाने के लिए राजभक्ति प्रदर्शित करने की होड़ यहाँ भारतेंदु ने कटाक्ष किया है। भारतेंदु युग राजभक्ति और राष्ट्र भक्ति के द्वंद्व के लिए भी जाना जाता है। 'अंधेर नगरी' तक आते - आते भारतेंदु इसकी परिणति परहित सुखाय में कर देते हैं। इसी विषय पर भारतेंदु आगे लिखते हैं कि "सांच कहै ते पनही खावैं। झूठे बहुविधि पदवी पावै। छलियन के एका के आगे। लाख कहौ एकहु नहिं लागे।"[10] अंग्रेज़ी शासन की अंधेर नगरी में ऐसा अंधेर है कि सच कहने वाले जूते खाते हैं और झूठ बोलने वाले पद पाते हैं। छल करने वालों में इतनी एकता है कि कुछ भी कह लो कोई सुनने वाला नहीं है। ऐसा शासन दिया है अंग्रेज़ी हुकूमत ने हमें।

अंत में चौपट राजा जब खुद ही फांसी पर लटक जाता है तब महंत के मुख भारतेंदु हरिश्चंद्र ने कहलवाया है कि "जहाँ न धर्म न बुद्धि नहिं, नीति न सुजन समाज। ते ऐसहि आपुहि नसे, जैसे चौपटराज।"[11] हालांकि अंग्रेज़ी शासन में अंधेर गर्दी अपने चरम पर थी फिर भी पढ़े लिखे चालाक अंग्रेज़ बहादुर इतनी आसानी से भारत से जाने वाले नहीं थे क्योंकि भारत का आर्थिक दोहन और लूट उन्हें सम्पन्न और हमें विपन्न बनाए जा रहा था। इसलिए भारतेंदु हरिश्चंद्र ने महंत के माध्यम से युक्ति लगाई। आवश्यकता थी कुछ ऐसी ही युक्ति लगाने की जिसके द्वारा अंग्रेज़ों को देश से बाहर किया जा सके। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' में धर्म की आड़ लेकर अधर्म करने वालों की खबर भारतेंदु हरिश्चंद्र ने ली है। पशु बलि और मंदिर पान का घोर विरोध भारतेंदु अपनी इस रचना में करते हैं। "सुनिए चित धरि यह बात। बिना भक्षण मांस के सब व्यर्थ जीवन जात। "जिन न खायो मच्छ जिन नहिं कियो मदिरा पान। कछु कियों नहिं तिन जगत मैं यह सु निहचै जान।"[12] राजा, मंत्री, पुरोहित, चोबदार सभी एक से बढ़कर एक अपने अनैतिक कार्यों को नैतिकता प्रदान करने के लिए वेद और शास्त्रों की गलत व्याख्या कर नशे में झूमते और गाते हैं। "ऐसी गाढ़ी पीजिए ज्यौं मोरी की कीच। घर के जाने मर गए आ नशे के बीच।।"[13] राजा होते हुए भला राजा को कौन सजा दे, परंतु भारतेंदु ने इसका भी समाधान दे दिया है। भारतीय मान्यताओं के अनुसार मनुष्य अपने जीवन में जो कुछ भी भला-बुरा करता है उसका हिसाब-किताब उसे स्वर्ग या नरक में देना पड़ता है। ऐसे धर्मभ्रष्ट पाखंडियों को भारतेंदु ने नरक की हवा खिलाकर वहाँ उनके कर्मों का फल उन्हें दिलवाया है।

निष्कर्ष - भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटकों में आई कविताएँ ठुमरी और गज़ल मात्र नहीं है। यह केवल मनोरंजन या कमर मटकाने के लिए नहीं लिखी गई। इन कविताओं में एक उद्देश्य-प्रधानता है। यह उद्देश्य है नवजागरण की चेतना को जन - जन तक पहुँचाने का, जनता को जनता की रुचि में, आम मानस की तुक और लय में आम जन के व्यसन में जागृत करने का। जागरण का भाव भारतेंदु हरिश्चंद्र की नाट्य कविताओं का मुख्य उद्देश्य है। भारतेंदु के आरम्भिक नाटकों 'विद्या सुन्दर', 'रत्नावली' 'कर्पूरमंजरी' आदि पर रीतिकालीन कविताओं का प्रभाव दिखाई देता है। कहना होगा कि श्रृंगार प्रधानता इनका मुख्य विषय है, परंतु जैसे - जैसे भारतेंदु अपने युग की चिंताओं और विमर्शों के समीप आते गए उनके नाटकों में इसका प्रभाव भी बड़े पैमाने पर दिखाई देने लगा। भारतेंदु के नाटकों में आई कविताएँ अपने युग का प्रतिबिंब है। ये कविताएँ एक साथ - सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा राजनीतिक नवजागरण का उद्घोष है। पराधीनता से मुक्ति का भाव, नारी समानता का स्वप्न, सामाजिक अंधविश्वास तथा अंधी मान्यताओं का ज़ोरदार विरोध, नवजागरण की चेतना, नीति का उपदेश, आचरण की शुद्धता का भारतीय मूल्यबोध , धर्म की स्थापना, अधर्म का विरोध, अतीत का गौरव गान, भारतीय जीवन-दर्शन की प्रधानता, अपने ऐतिहासिक नायकों की जीवन गाथा व वीरता का बोध, आदि सभी विषय जो भारतेंदु के नाटकों का प्राण तत्व है इन सभी विषयों को बड़ी ही सहजता और सरलता से भारतेंदु ने अपनी कविताओं में सजाया है। भारतेंदु के नाटकों में आई कविताएँ भारतेंदु के नव जागरणकालीन बोध का प्रमाण है। समाज सुधार की अलख जगाने तथा राष्ट्रीय चेतना के प्रसार-प्रचार में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटक संवादों के लिए उतने जाने नहीं जाते जितने उसमें आई कविताओं के लिए आज भी जाने जाते हैं। कहा जा सकता है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटकों में आई कविताएँ भारतेंदु के नवजागरण कालीन चिंतन की महत्वपूर्ण एवं अविभाज्य कड़ी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1 भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच, आचार्य, सीता राम

चतुर्वेदी, हिंदी समिति सूचना विभाग,उत्तर प्रदेश, लखनऊ, प्रथम संस्करण, 1964, पृष्ठ 1
2 दशरूपकम्, आचार्य, धनंजय, संपा, डॉ. श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार प्रकाशन, सुभाष बाज़ार, मेरठ, प्रथम संस्करण, 1699,नवीन संस्करण, 1994, पृष्ठ 6
3 चिंतामणि भाग - 1, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, प्रथम संस्करण, 1939, पृष्ठ 141
4 भारतेंदु ग्रंथावली, संपा, डॉ. मिथिलेश पाण्डेय, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ 198
5 वहीं, पृष्ठ 200
6 वहीं, पृष्ठ 305
7 वहीं, पृष्ठ 307
8 वहीं, पृष्ठ 332
9 वहीं, पृष्ठ 333
10 वहीं, पृष्ठ 408
11 वहीं, पृष्ठ 410
12 वहीं , पृष्ठ 45
13 वहीं, पृष्ठ 51

एकाडमिक काउंसलर,
दिल्ली विश्वविद्यालय , एस ओ एस
(सी -115 /1, गली नंबर - 4
शास्त्री पार्क , दिल्ली – 110053)
ई.मेल - arya2019rohit@gmail.com
सम्पर्क सूत्र - 9711332415

साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में युवा सशक्तिकरण

◆डॉ.शिवकुमार सी एस हड़पद

युवावस्था में व्यक्ति का शारीरिक और मानसिक विकास हो जाता है। व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक शक्ति प्रखर, प्रबल और सदा संवेदनशील रहती है। चिन्तन, चेतना और कर्म के स्तर पर युवा पीढ़ी को प्रबुद्ध बनाने की प्रक्रिया को युवा सशक्तिकरण कहते है।

कुबेरनाथ राय ने युवा विशेषताओं का प्रतिपादन करते हुए कहा है-"जो सतर्क है, सृष्टि करता है, वह निश्चय ही चिरयुवा होगा। जवानी एक चमाचम धारदार गड़क है"। [1] सशक्तिकरण एंपवरमेंट शब्द का हिंदी अनुवाद है। किसी भी संज्ञा या सर्वनाम के मूल गुणों को उभारकर शक्ति प्रदान करना ही सशक्तिकरण है।

साहित्य में युवा सशक्तिकरण का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें युवा जीवन के हर पहलुओं का चित्रण होता है। यहाँ उनके जीवन के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक आदि सभी क्षेत्रों की समस्याएँ उठाई जाती हैं। सोलह से लेकर चालीस की उम्र के व्यक्ति युवक और युवतियाँ होते है। युवक देश की आसा होता है। वह भारत को हर क्षेत्र में जीतता और आगे बढ़ता देखना चाहता है। आज के युवक अपने मनपसंद क्षेत्र में पाव रखकर कुछ कर गुज़रना चाहते है। युवकों की शारीरिक एवं मानसिक शक्ति समाज के अन्य सभी वर्गों से अधिक होती है। इसलिए उनके दायित्व भी अधिक होने चाहिए। सूचना, तकनीकी, दूरसंचार आदि क्षेत्रों में अब प्रगति हुई है। यह युवापीढ़ी के प्रयासों का नतीजा है।

साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त युवा सशक्तिकरण को निम्नलिखित अंशों के द्वारा विश्लेषण कर सकते है।

1.युवकों का स्वतंत्र चिन्तन– सामाजिक अनुबंधन युवाओं की व्यक्तिगत मानसिकता के अंग बन जाते है। उनके व्यवहार पर प्रभाव डालते है। युवकों में सशक्तिकरण की शुरुआत सबसे पहले अपने व्यवहार और दृष्टिकोणों में परिवर्तन से होती है। इसका अर्थ यह है कि सर्वप्रथम युवकों की चेतना को ही बदलना चाहिए। 'न भूतो न भविष्यति' में नरेन्द्र कोहली जी ने विवेकानंद के चरित्र का अंकन किया है।

विवेकानंद का मूल उद्देश्य समाज और देश का उद्धार करना था। उनके व्यक्तिगत आग्रह उसके लिए कभी बाधक नहीं बनते थे।

तभी तो उन्होंने युवकों से ऐसा कहा कि घर बैठकर गीता पढ़ने के बदले मैदान में फुटबॉल खेलकर अपने आप ईश्वर को जल्दी प्राप्त कर सकेगा। उसे अपनी आत्मा का स्वर सुनाई पड़ रहा था-"परिवार के पालन, पोषण और जीवन के सुखभोग केलिए तेरा जन्म नहीं हुआ है। यह संसार तेरा प्राप्त नहीं है। तुझे इसके पार जाना है। तुझे माया की इस यवनिका के पार उस माया पति का साक्षात्कार करना है। वह गृह-पालन से नहीं, गृह त्याग से होगा। तुझे अपने पितामह के सामान गृह त्याग करना है। सन्यासी होकर तपस्या करनी है"।[2] इस रास्ते पर चलकर विवेकानंद ने युवा पीढ़ी के लिए तर्कशीलता और संतुलित व्यवहार-बुद्धि का आह्वान दिया।

अपने परिश्रम से विश्वविद्यालय के कुलपति बनने वाली महिला की कहानी है 'लक्ष्य वेद'। इंदिरा राय 'लक्ष्य वेद' में मनोरमा नामक एक सशक्त नारी की कहानी कहती है। साधारण परिवार में रहने वाली मनोरमा कृषि विश्वविद्यालय में कुलपति बन जाती है। मनोरमा मुश्किल वक्त में अपने आप को जगाने के लिए कहती थी-"डॉक्टर मनोरमा सक्सेना ! तुम्हारे भाग्य में ऐसा पलायन कहाँ तुम्हें संघर्ष करना है अपने को बनाए रखने के लिए। कब कहाँ से आक्रमण हो जाए, इसका यदि पूर्वानुमान लगाकर काट न सोच पाई तो, हो चुकी तुम्हारी जीत"। [3]

ऐसे ही एक साधारण आदमी का अपने कर्म से एक महान व्यक्तित्व बन जाने की कहानी है योगेंद्र शर्मा का उपन्यास 'रूहेलखंड का गांधी'। गरीबी से लड़कर चुन्ना मियां एक पूरे शहर के नहीं राज्य के लिए अच्छा नमूना बन जाता है। फेरी लगाने वाला चुन्ना मियां गाँव में सड़क, मंदिर, अस्पताल, स्कूल आदि का निर्माण बिना किसी झुकाव से कर लेता है।

2. राजनीति और युवा पीढ़ी - भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक राष्ट्र है। यहाँ अठारह वर्ष के पुरुष और महिला को निर्वाचन देने का अधिकार है। राजनीतिक और युवा वर्ग में अभेद्य सामंजस्य है। स्वतंत्रता आंदोलन के समय में युवकों की सक्रिय भागीदारी थी। गांधी जी के आह्वान से युवकों ने कॉलेज और विश्वविद्यालय छोड़कर राजनीति में भाग लिया था और भारत की स्वतंत्रता के लिए अपना जीवन अर्पित किया था।

'अभिषेक' उपन्यास का एक पात्र है-शिरीष जो मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित युवक है, वह साम्यवादी नहीं है, परंतु सबको समान अधिकार देने वाला साम्यवाद देश में कितना आवश्यक है, इस बात को वह समझने लगा है। साम्यवाद के संदर्भ में वह अपनी प्रतिक्रिया देते हुए कहता है- "कितनी पढ़ाई की मैंने। एक-एक बात का भरपूर ज्ञान है, कोई पूछे न ईमानदारी से। पर योग्यता को तो हमारे यहाँ जैसे ताक पर रखो। हाथ में थैला लो.... मैं सचमुच में कम्युनिस्ट नहीं हूँ, लेकिन राष्ट्र की कुछ समस्याएँ मुझे उनकी ओर मुड़ने पर बाध्य करती हैं"। [4] आम आदमी के लिए किसी दल या उसकी नीति से अपनी रोज़ी-रोटी की अधिक चिन्ता रहती है। उपन्यास में मिश्राजी हरिजनों को बेघर करके कंपनी खुलवाना चाहता है, वह एक राजकीय नेता है। हरिजनों को वहाँ से हटाने के लिए नक्सलाईट बनाकर मारकर भगाना चाहता है। तब एक हरिजन महिला कहती है- "मालिक हमारा कौनओ दोष नाही, सुबह से शाम घसिटता है, ताऊ पेट भर चना चबेना नहीं पावत हम नाक्सलेट और कम्युनिस्ट क्या जाने। हम तो गरीब दुखियारे आपके पैरों की जूती आपकी परजा हरिजन हैं"। [5]

इसी उपन्यास का 'अधीर' एक ऐसा देश प्रेमी युवक है, जो हरिजनों के अधिकार के लिए झगड़ता रहता है। वह केवल एक समाजसेवी कार्यकर्ता है। किसी एक दल से उसका कोई संबंध नहीं है। एक दिन वह जब तहसील में जाता है, वहाँ कुछ मौलवी आकर गदर पैदा करते हैं और उसका दोष अधीर के माथे पर मार दिया जाता है और अधीर जैसे-सच्चे और ईमानदार सेवक को जेल भेज दिया जाता है। जेल में उसे अलग अनुभव आता है। वह भी एक नेता ही है, चाहे हरिजनों का क्यों नहीं, परंतु अन्य दलों के

नेताओं को जो सुविधाएँ मिलीं वह अधीर को नहीं दी गयीं। उपन्यास में जानकी स्वातंत्र्य सेनानी की पत्नी है। उसके देश में फैले जातिवाद के संदर्भ में यह विचार देखिए-"राजनीति में मरे लोग क्या सुनेंगे.... वे तो कुर्सियों पर भूत बन चिपके हैं और जो उधर बढ़ा जातिवाद की आड़ ले वे उसकी गर्दन मरोड़ देंगे"।[6] उपन्यास का नायक पियूष जिलाधीश है। एक हरिजन नेता उससे कहता है कि हर पार्टी की सरकार ने हमारे साथ अन्याय किया है, इसीलिए जब तक हमारी अपनी सरकार नहीं बनती तब तक हमें न्याय नहीं मिलेगा। इस बात पर पियूष कहता है- "तुम्हारी जाति वाले जो मंत्री बने तो वे कभी मुड़कर तुम्हारी बस्ती में झाँके तक नहीं, बस भाषण करके 40 वर्षों से हरिजन के नाम पर मंत्री सुख भोग रहे हैं"।[7]

3.युवा वर्ग का संगठन और जागरण – युवा वर्ग ऊर्जा और शक्ति, संगठन और जागरण से हमदा कर सकते हैं। स्वामी विवेकानंद नवयुवकों के सर्वांगीण विकास पर बल देते थे। वे युवकों को अपने सर्वोच्च विकास के लिए प्रेरणा देते है। युवकों में विवेकानंद आत्मिक विकास को जगाने का प्रयास करते हैं। विवेकानंद युवकों से निरंतर संघर्ष करने के लिए कहते हैं। 'न भूतो न भविष्यति' में नरेन्द्र कहते है-"न्याय कहता है, अन्याय का विरोध करो। अन्याय का विरोध करने के लिए संघर्ष भी करना पड़ता है। संघर्ष से युद्ध जन्म लेता है। इसलिए न्याय के लिए युद्ध भी करना पड़ता है"। [8] स्वामीजी नवयुवकों को यह उपदेश देते हैं कि सदा जागृत रहो। वे युवकों से परिश्रम को अपनाने के लिए कहते हैं। उनकी राय में देश के युवकों में संगठन की कमी है। इसलिए रामकृष्ण परमहंस के नाम पर उन्होंने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की जिससे युवा जन सेवा में अपना जीवन अर्पित करें। इस तरह स्वामी विवेकानंद ने भारत का उद्धार करने का कार्य युवा वर्ग पर सौंपा है। इसके लिए युवा वर्ग को संगठन के महत्व को समझना चाहिए।

4.स्वावलंबन का महत्व- स्वावलंबन का गुण प्रत्येक समाज की उन्नति के लिये परम आवश्यक है। बच्चा युवा होता है तो उसे अपने पैरों पर खड़े होने का अवसर मिलना चाहिए। अपने श्रम से अपनी ज़रूरतों को पूरा करने की क्षमता ही स्वावलंबन है। 'अतिशय' उपन्यास में यति स्वावलम्बन के महत्व को समझाते हुए कहता है- "सोचो, तुम्हारी उपलब्धि से आज समाज को क्या मिल रहा है? देश जिस मोड़ से गुज़र रहा है, सभी को कड़ी मेहनत करने की आवश्यकता है। विकासशील देश की समस्याओं की भी थाह नहीं। एक दिन हम अपनी औद्योगिक प्रगति के बल पर ही दुनिया के मेले में अपनी दुकान लगाने की जगह बना सकेंगे। जहाँ तक गरीबी का सवाल है, उद्योग-धंधों के विकास से उनकी भी बेरोज़गारी दूर होगी, उनका जीवन स्तर उड़ेगा। तुम्हारा ज्ञान की खोज खाली बैठे-बिठाए मन का फितूर नहीं है क्या"? [9]

'इसे विदा मत कहो' उपन्यास में लक्ष्मी को आत्मनिर्भर बनाने के लिये आर्य कोशिश करता है। आत्मनिर्भर बनने का कोई सरल मार्ग नहीं है। आजकल पैतृक संपत्ति के आधार पर आत्मनिर्भर होने की बात बेमानी हो गयी है। आज के युवा इस तथ्य को जानकर स्वयं कुछ कर दिखाना चाहते हैं। इसलिए शालु 'वेलंडैनस डे' उपन्यास में अपने चित्र बेचने के लिये सड़क पर घूमती है।

नई मान्यताओं को स्वीकार करने के लिए आज का युवा वर्ग विद्रोह कर रहा है। वह प्राचीन मान्यताओं के बंधन में जकड़कर नहीं रह सकता। उसे अब इस वैज्ञानिक युवक में नई चेतना की आवश्यकता है, वह अपने विचारों में परिवर्तन करने की पहल करता है। 'क्योंकि' उपन्यास में दीपक अपनी पत्नी को यही समझाते हुए कहता है-"तुम न जाने कैसी पढ़ी-लिखी हो, अभी भी सब कुछ पुराने ढ़ंग से सोचती हो। हमारी सुधा, मनोहर, बबलू सभी खूब पढ़ेंगे। हम उन पर शक्ति भर रूपया खर्च कर उन्हें ऊँची शिक्षा दिलायेंगे। उन्हें इस लायक बना देंगे कि वे अपना भला-बुरा खुद सोच सकें। आज की पीढ़ी को खुद के जोड़े बनाने का काम अब अपने ऊपर लेना चाहिए। ज़माना काफी आगे बढ़ चुका है"। [10]

निष्कर्ष – युवा सशक्तिकरण की दिशा में

हिंदी के साठोत्तरी उपन्यासकारों का योगदान भी सराहनीय है। उन्होंने युवाओं की समस्याएँ, उनका समाधान, युवाओं की नई संवेदनाएँ, सशक्तिकरण के मार्ग, आदि विषयों को अपने उपन्यासों में स्थान देकर युवा सशक्तिकरण के मार्ग को प्रशस्त किया है। जब हम हिंदी के साठोत्तरी उपन्यासों को पढ़ते हैं, तो किसी न किसी रूप में युवा चित्रण उनमें मिलता है। साथ ही उपन्यासकारों ने युवा सशक्तिकरण के मार्ग की रुकावटों को भी चित्रत किया है। हमारे देश की दूषित सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक व्यवस्था ने युवाओं के सपनों को बिखेर दिया है। युवाओं की आशाएँ भी टूटी हैं, लेकिन इन सभी स्थितियों से युवा उबरकर आये हैं और आ रहे हैं। युवा सशक्तिकरण की दिशा में यह सकारात्मक कदम मान सकते हैं। युवा सशक्तिकरण को केवल एक नारा बनकर नहीं रहने देना है, बल्कि उसे वास्तव में चरितार्थ करना है। युवाओं के भविष्य को उज्ज्वल बनाने में देश के प्रत्येक नागरीक, सरकार और साहित्यकारों का सहयोग भी आवश्यक है। अंत में आशा करता हूँ कि युवा सशक्तिकरण, हमारे देश की स्थिति और गरिमा को अवश्य सुधारेगा।

संदर्भ

1 कुबेरनाथ राय - कुबेरनाथ राय का निबंध संकलन, भारतीय ज्ञानपीठ, प्र.सं. – 2002. पृ-10

2 नरेन्द्र कोहली, न भूतो न भविष्यति, वाणी प्रकाशन, प्र.सं-2004, पृ-89

3 इंदिरा राय, लक्ष्यदेव, वाणी प्रकाशन, प्र.सं.-1985 पृ-50

4 कृष्णा अग्निहोत्री-अभिषेक, अमन प्रकाशन, प्र.सं.1984,पृ.205

5 कृष्णा अग्निहोत्री-अभिषेक, अमन प्रकाशन, प्र.सं. 1984,पृ.209

6 कृष्णा अग्निहोत्री-अभिषेक, अमन प्रकाशन, प्र.सं. 1984,पृ.182

7 कृष्णा अग्निहोत्री-अभिषेक, अमन प्रकाशन, प्र.सं. 1984,पृ.189

8 नरेन्द्र कोहली, न भूतो न भविष्यति, वाणी प्रकाशन, प्र.सं- 2004 पृ-107

9 मृदुला सिन्हा, अतिशय, प्रभात प्रकाशन, प्र.सं-2003 पृ-36

10 शशिप्रभा शास्त्री-क्योंकि, वाणी प्रकाशन प्र.सं-1980, पृ-9

◆ सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग

डॉ.अंबेडकर कला, वाणिज्य महाविद्यालय एवं स्नातकोत्तर केन्द्र

कलबुरगि – 585101 (कर्नाटक) ।

मोबाइल नं – 7349168677

ई.मेल- shivkumarcs1985@gmail.com

'चलता हुवा लावा' उपन्यास में चित्रित पारिवारिक यथार्थ

◆ नीतू एस एन

'उपन्यास' अक्सर पाठक के अनुभवों और काल्पनिक दुनिया के बीच एक कड़ी के रूप में यथार्थ को शामिल करता है, जिसमें कथानक, चरित्र और स्थान शामिल होते हैं जो यथार्थ दुनिया के अस्तित्व की जटिलताओं को दर्शाता है। लेखक अपने कार्यों को मान्यता प्राप्त यथार्थताओं में स्थापित करके मानव स्वभाव, सांस्कृतिक मानकों और जीवन की बाधाओं में गहराई से उतर सकता है। "उपन्यास एक प्रकार से सत्य की खोज और अयथार्थ एवं असत्य का ध्वंस करने का एक साहित्यिक अधिकार है। मनुष्य जीवन के यथार्थ जीवन का चित्र देने की आकांक्षा रखनेवाली इस विधा ने मनोरंजन के लिए परंपरागत साधन के रूप में कथातत्व को स्वीकार किया, परंतु मनुष्य चरित्र के माध्यम से जीवन के विविध रुपों का उद्घाटन करना ही उसकी आकांक्षा रही है"।[1] ये यथार्थ अक्सर उस युग की सामाजिक संरचनाओं, मानदंडों और रीति-रिवाज़ों को दर्शाते हैं जिनमें एक उपन्यास

सेट किया गया है, साथ ही लोगों और समाज पर प्रचलित आर्थिक स्थितियों के प्रभाव भी। उपन्यास सत्ता संबंधों, राजनीतिक संस्थानों और पर्यावरण का भी पता लगाते हैं, अक्सर समाज पर डस्ट बाउल के प्रभावों पर ध्यान केंद्रित करते हैं। सत्य को कल्पना में शामिल करके, उपन्यास मज़बूत भावनात्मक प्रतिक्रियाओं को जगा सकते हैं और मानव स्थिति के बारे में आत्मनिरीक्षण को प्रोत्साहित कर सकते हैं। उपन्यासों में सांस्कृतिक-सामाजिक यथार्थ, मनोविज्ञान, वास्तविक अर्थव्यवस्था, राजनीति, पारिस्थितिक यथार्थ और वास्तविक अस्तित्व शामिल हैं।रमेश बक्षी द्वारा लिखित "चलता हुआ लावा" एक साहित्यिक कृति है जो भारतीय समाज और पारिवारिक जीवन की जटिल गतिशीलता की खोज करती है। कहानी बदलते सामाजिक परिदृश्य, पारिवारिक गतिशीलता और इसके पात्रों के व्यक्तिगत विकास पर प्रकाश डालती है। यह पारिवारिक रिश्तों की जटिलता, परिवार और समाज के बीच विवाद, सामाजिक परिवर्तनों और परिवार के बीच संघर्ष और पारंपरिक और समकालीन मूल्यों के बीच संघर्ष को उजागर करती है।

रमेश बक्षी द्वारा लिखित "चलता हुआ लावा" एक ऐसी कहानी है जो पारिवारिक जीवन की जटिल गतिशीलता की खोज करती है, जिसमें लावा के रूपक का उपयोग पारिवारिक संबंधों में तनाव, संघर्ष और भावनात्मक उथल-पुथल के प्रतीक के रूप में किया जाता है। रमेश बक्षी (1932 से 1990), एक प्रसिद्ध हिंदी लेखक, पत्रकार और कहानीकार हैं । उनकी रचनाएँ सामाजिक विषयों, मानवीय भावनाओं और जीवन की वास्तविकताओं को स्पष्ट रूप से दर्शाती हैं, जो मध्यम वर्ग द्वारा सामना किए जाने वाले मुद्दों, कठिनाइयों और भावनाओं पर केंद्रित हैं। बक्षी के लेखन में विभिन्न प्रकार के कथानक हैं, जो सामाजिक विडंबनाओं, व्यक्तिगत आंतरिक संघर्षों और विकसित सामाजिक स्थितियों को दर्शाते हैं। उनकी रचनाएँ जीवन की वास्तविकता को स्पष्ट रूप से दर्शाती हैं, जो औसत व्यक्ति की चुनौतियों, लक्ष्यों और रोज़मर्रा के जीवन पर केंद्रित हैं। उनकी जीवंत भाषा बोधगम्य, सरल और सजीव है, जो पात्रों के विचारों और संवादों को उनके काल, क्षेत्र और संस्कृति में व्यक्त करती है। उनका काम समसामयिक मामलों से प्रभावित है, क्योंकि उन्होंने एक पत्रकार के रूप में अपने अनुभवों के कारण गहन ज्ञान और दृष्टिकोण के साथ लिखा है। रमेश बक्षी के व्यक्ति जीवन से सम्बन्धित माणिका मोहिनी का कहना है कि “प्रभाष जोशी ने रमेश बक्षी के लिए "औरतबाज़" शब्द का प्रयोग किया था, जो मुझे कतई उपयुक्त नहीं लगता। कई औरतों के साथ सम्बन्ध रख लेने से ही कोई औरतबाज़ नहीं बन जाता, बल्कि देखना यह होता है कि उन औरतों के साथ उसका रवैया क्या है? औरतबाज़ पुरुष औरतों को घर में लाकर नहीं बैठाते। रमेश घरबाज़ थे, जिन्हें औरत से शारीरिक, मानसिक संतुष्टि के अतिरिक्त यह भी अपेक्षा थी कि वह उनके घर को सँवारे, उनके लिए रोटी बनाए, उनके साथ रह कर सभी खट्टे-मीठे क्षणों की भागीदार बने, और उनके बच्चे भी पैदा करे। लगता है, रमेश एक घर की तलाश में भटकते रहे, वे "घर" चाहते थे लेकिन उन्हें घर को बनाए रखने की कला नहीं आती थी। उनका लेखक होना उन पर हावी था। उन्हें उनके लेखक होने ने मारा। उनके अवचेतन में तलाश एक घर की चल रही थी, जिसे वे बार-बार बसाने की कोशिश में बार-बार टूटते रहे और अंत में टूटे तो एक बसे-बसाए घर का मालिक होने का भ्रम लेकर और देकर।

(उस समय सुना गया था कि कोई राज्य सरकार और कई अकादमियाँ रमेश बक्षी के परिवार को सहायता राशि देने पर विचार कर रही हैं, क्योंकि रमेश का छोटा पुत्र अभी बहुत छोटा था। लेकिन जब रमेश ने अपनी पहली पत्नी को छोड़ा था, उस समय उससे उत्पन्न रमेश का पुत्र इतनी ही उम्र का या इससे छोटा रहा होगा। उसकी परवरिश के लिए तो किसी सरकार या अकादमी ने नहीं सोचा था।) पति-पत्नी के

रिश्ते की यही अहमियत है कि टूटने की तमाम स्थितियों से गुज़रते रहकर भी यदि किसी कारणवश आप नहीं टूटते हैं तो आपके अधिकार ससम्मान सुरक्षित रहते हैं"।[2] हिंदी साहित्य में उनके साहित्यिक योगदान को अत्यधिक महत्व दिया जाता है, क्योंकि उन्होंने पाठकों को चिंतन करने के लिए प्रेरित किया तथा अपनी कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से भारतीय संस्कृति का ईमानदार चित्रण किया। उनकी रचनाएँ हैं-

1.कहानी संग्रह : 'मेज़ पर टिकी हुई कहानियाँ', 'कटती हुई ज़मीन', 'दुहरी जिंदगी', 'पिता-दर-पिता' , 'एक अमूर्त तकलीफ' , 'मेरी प्रिय कहानियाँ' , 'दस प्रतिनिधि कहानियाँ'।

2.उपन्यास : 'हम तिनके', 'किस्से ऊपर किस्सा', 'अट्ठारह सूरज के पौधे', 'बैसाखियों वाली इमारत', 'चलता हुआ लावा', 'खुलेआम'।

3.नाटक : 'देवयानी का कहना है', 'तीसरा हाथी', 'वामाचार', 'छोटे नाटक', 'एक नाटककार', 'कसे हुए तार', 'खाली जेब'।

4.कविता संग्रह : 'बूमरेंग'।

5.व्यंग्य : 'गुस्ताखी माफ', 'अपने-अपने लतीफे' ।

6. बाल साहित्य : 'तिली-तितली' (कहानियाँ), 'हँस नाटक' (नाटक) ।

7.संपादन : 'जानीट्य' (कोलकाता से निकलने वाली मासिक साहित्यिक पत्रिका), 'आवेश' (लघु पत्रिका), 'शंकर्स वीकली' (साप्ताहिक पत्रिका), 'भुवनेश्वर की चुनी हुई' रचनाएँ'। उनकी प्रमुख कृतियों में "पानी का पुल", "अकाल", "चलता हुआ लावा" और "आधी रोटी" शामिल हैं।

"चलता हुआ लावा" कहानी परिवार के भीतर लंबे समय से दबी हुई भावनात्मक ऊर्जा के दमन के इर्द-गिर्द घूमती है। कहानी रिश्तों की जटिलताओं और विरोधाभासों को उजागर करती है। यह कहानी परिवार में आपसी सम्मान, संचार और समझ के महत्व पर ज़ोर देती है । यह एक शक्तिशाली कथा है जो पारिवारिक संबंधों की नाज़ुक प्रकृति और अनसुलझे तनावों और आक्रोशों के संभावित विनाशकारी प्रभावों को उजागर करती है।पारिवारिक संरचना की विशेषताएँ, अपेक्षाएँ, असफलताएँ और भावनात्मक विवाद जो हैं, परिवार के सदस्यों के बीच संबंधों को प्रभावित करते हैं। कहानी के संदर्भ "माँ ने कहा – ऐसी बहू से तो मेरा बेटा क्वांरा ही रहता । ....वह बोली – ऐसे घर में रहने से जंगल में रहना अच्छा है । मैं चीख उठा था – मैं मर जाऊँगा इस घर में" ।[3] यहाँ माँ, बहू और बेटे की बातचीत के माध्यम से परिवार के भीतर तनाव, नाखुशी और विवादों को उजागर किया गया है। बहू के परिवार के लिए उपयुक्त होने और अपने बेटे के जीवन पर उसके नियंत्रण से माँ का असंतोष स्पष्ट है। बहू द्वारा परिवार की संरचना को अस्वीकार करना और स्वतंत्रता की इच्छा स्पष्ट है, जो इसे जंगल में रहने से तुलना है। । माँ की बातचीत उसके बेटे के जीवन पर उसकी ताकत और नियंत्रण को प्रदर्शित करती है, जबकि बहू की प्रतिक्रिया पारिवारिक संरचना और स्वतंत्रता की उसकी इच्छा के साथ उसके असंतोष को दर्शाती है। बेटे की चीख उसकी आंतरिक उथल-पुथल और उसके परिवार की असहनीय स्थिति को व्यक्त करती है- अंश परिवार के यथार्थ को गहरे और मार्मिक तरीके से चित्रित करता है, जिसमें प्रेम, अस्वीकृति और आंतरिक कलह के बीच का अंतर एक सूक्ष्म पारिवारिक चित्र बनाता है।

नायक पारिवारिक जीवन से असंतुष्ट है । लेकिन सामाजिक अपमान से डरते हैं, क्योंकि वे अपने परिवार को शर्मिंदा करने के डर से तलाक के फैसले में देरी करते हैं। उपन्यास का नायक इस प्रकार कहता है कि "एक ही शादी से तबीयत भर गई ना जो अब फिर शादी करके प्रोग्रेसिव कहलाये । मैं तलाक देकर क्यों आपकी बदनामी करवाऊँ"?[4] यह उद्धरण व्यक्तियों द्वारा सामना किए जाने वाले आंतरिक उथल-पुथल और सामाजिक दबावों को उजागर करता है, विशेष रूप से वे जो शादी से थक चुके हैं और अपने परिवार और समाज की प्रतिष्ठा के लिए विवाहित रहना

चाहते हैं। वक्ता विवाह से अपना असंतोष और खुद को प्रगतिशील के रूप में पेश करने के सामाजिक दबाव को व्यक्त करता है। वे तलाक की आवश्यकता पर भी सवाल उठाते हैं, क्योंकि इसे एक पाप के रूप में देखा जाता है जो उनके परिवार की प्रतिष्ठा पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। पारिवारिक यथार्थ परंपरा और आधुनिकता के बीच तनाव में परिलक्षित होता है। जिसमें व्यक्ति इसे बढ़ाने के बजाय अपने विवाह को छोड़ने पर विचार करता है। यह आंतरिक तनाव और अनिश्चितता को उजागर करता है जो व्यक्ति परिवार और समाज के नियमों के बीच अनुभव करता है ।

नायक अपनी शादी में असंतोष के कारण अपनी शादी के बाहर भावनात्मक पूर्ति की तलाश करता है। नायक विवाहेतर संबंध गुड्डम के साथ रखता है। संदर्भ इस प्रकार है कि "मेरा एक कटा हुआ टुकडा हमेशा गुड्डम के साथ होता और मुझे लगता कि मेरे जिंदा रहने के सारे तत्व उस हरारतवाले टुकड़े में ही केन्द्रित हो गये हैं"।[5] उद्धरण में नायक के विवाहेतर संबंध को दर्शाया गया है, जहाँ वह अपने जीवन के एक महत्वपूर्ण पहलू को अपने जीवनसाथी के अलावा किसी और से जोड़ता है। यह संबंध उसकी मानसिक और भावनात्मक स्थिति को दर्शाता है, जिसे वह अपनी पत्नी के बजाय गुदुम से संतुष्ट करता है। नायक इस रिश्ते को अपनी जीवन शक्ति और अस्तित्व का स्रोत मानता है, क्योंकि इसने उसकी सारी जीवन शक्ति और अस्तित्व को खा लिया है। उसका जीवन गुदुम के लिए उसके प्यार और व्यक्तिगत इच्छाओं और सामाजिक और वैवाहिक दायित्वों के बीच विभाजित है। यह परिवार रूपी इकाई के भीतर गहरे आंतरिक तनाव और असंतोष को उजागर करता है।

निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि बक्षी ने पारिवारिक संबंधों में मौजूद भावनात्मक तनाव और संवेदनशीलता को कुशलता से दर्शाया है। उपन्यास पात्रों के आंतरिक संघर्षों को भी उजागर करता है, क्योंकि वे अपने परिवार, समुदाय और व्यक्तिगत जीवन में शांति बनाए रखने का प्रयास करते हैं।एक पारिवारिक कहानी होने के अलावा, "चलता हुआ लावा" भारतीय संस्कृति और परिवार में निहित जटिलताओं, बदलावों और तनावों का एक शानदार चित्रण प्रस्तुत करता है। इस कृति में पारिवारिक जीवन की संवेदनशील और गहन प्रस्तुति पाठकों को आज की दुनिया में परिवारों द्वारा सामना किए जाने वाले जटिल रिश्तों और चुनौतियों पर विचार करने के लिए मज़बूर करती है।

संदर्भ

1. 'उपन्यास स्थिति और गति'– चंद्रकांत बांदिवडेकर – पृ.सं.2
2. https://www.garbhanal.com/ramesh-bakshee-use-lekhak-hone-ne-maara
3. रमेश बक्षी - 'चलता हुआ लावा'– पृ.सं.37
4. रमेश बक्षी- 'चलता हुआ लावा' – पृ.सं.43
5. रमेश बक्षी - 'चलता हुआ लावा' – पृ.सं.60

संदर्भ ग्रंथ सूची

1.उपन्यास : स्थिति और गति -चंद्रकांत बांदिवडेकर – वाणी प्रकाशन , नई दिल्ली - प्रकाशन वर्ष · 2014

2.चलता हुवा लावा- रमेशबक्षी – राधाकृष्ण प्रकाशन – दिल्ली – सं,1982

3.https://www.garbhanal.com/ramesh-bakshee-use-lekhak-hone-ne-maara

4.मोहन राकेश के कथा साहित्य का संवेदना पक्ष – डां रकिश कुमारी , आकाश पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स , गाजियाबाद – प्र.सं.2003

5.आधुनिक हिंन्दी कविता में यथार्थबोध – शोभा खेमानी – राजीव प्रकाशन – इलहबाद 1993

6.परिवार, विवाह और रिश्तेदारी - ए. एम. शाह - रावत पब्लिकेशन्स- 2010

7.भारत में परिवार और समाज - राम आहूजा - रावत पब्लिकेशन्स – 1993

8.विवाह, परिवार और समाजशास्त्र -नवल किशोर शर्मा - रावत पब्लिकेशन्स -2015

9.भारतीय समाज में स्त्री और परिवार - सुमन गुप्ता - किटाब महल - 2012

◆शोधार्थी

हिन्दी विभाग, यूनिवेर्सिटी कॉलेज

तिरुवनंतपुरम, केरल।

फोन-999511386

जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविताओं में अभिव्यक्त प्रकृति

◆पूजा कुशवाहा ◆◆ डॉ.विनोद कुमार

शोध सार – प्रकृति, मानव और साहित्य का सम्बन्ध सृष्टि के प्रारंभ से ही रहा है, क्योंकि मानव के कृत्यों का असर अगर प्रकृति पर होता है तो प्रकृति में बदलाव भी मानव जीवन को बहुत गहरे प्रभावित करता है और इसी प्रभाव को मनुष्य साहित्य में अभिव्यक्ति देता रहा है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रकृति मानव जीवन का अभिन्न अंग है, क्योंकि मानव जीवन की डोर इस प्रकृति से बंधी हुई है। वर्तमान समय में पर्यावरण एक वैश्विक मुद्दा बना हुआ है और वैश्विक स्तर पर साहित्य में भी पर्यावरण के विविध रूपों की अभिव्यक्ति हो रही है। अब समय है कि हर व्यक्ति इसके प्रति संवेदनशील हो। इस शोध के माध्यम से हम जान सकते हैं कि कैसे प्रकृति के प्रति जागरूकता एक स्वस्थ और सतत समाज के निर्माण में योगदान कर सकती है। इस शोध में विशेष रूप से यह देखा गया है कि देश के विभिन्न भागों (शहरी, ग्रामीण और पहाड़ी क्षेत्रों में प्रकृति में महत्वपूर्ण भिन्नताएँ हैं। यह शोध प्रकृति के महत्व को रेखांकित करता है।

बीज शब्द – प्रकृति, पहाड़, परिवर्तन, संवेदनशीलता, पर्यावरण संरक्षण, संघर्ष, प्राकृतिक संसाधन, श्रम, सौन्दर्य

मूल आलेख –

हिंदी काव्य जगत में प्रकृति को विभिन्न रूपों में अभिव्यक्ति मिली है। आदिकाल में प्रकृति को आलंबन, रीतिकालीन काव्यों में उद्दीपन, छायावादी काव्य में प्रकृति को आलंबन, उद्दीपन तथा मानवीकरण यानी नारी के रूप में में चित्रित किया गया है। इसके बाद समकालीन कवि भी प्रकृति और पर्यावरण के प्रति चेतनायुक्त कविताओं का सृजन किया। आज जब मनुष्य अपने भौतिक विकास के लिए प्रकृति को विकृत कर रहा है वहाँ ये कविताएँ विशेष महत्त्व की हैं। जितेन्द्र श्रीवास्तव भी इस प्रकृति के प्रति अपने मोह को नहीं त्याग पाए या ये कहें कि अपने कर्तव्यों को विस्मृत नहीं कर पाए। और इसलिए इनकी कविताओं में प्रकृति और पर्यावरणीय चेतना का सभी पर्यायों में व्यापक अध्ययन करना रोचक और महत्वपूर्ण है। उनकी कविताओं में प्राकृतिक रूप से व्यक्ति और पर्यावरण के संबंध को उनकी विशेष धार्मिक, सामाजिक, और राजनीतिक संजीवनी में प्रस्तुत किया गया है। इनकी कविताओं के सन्दर्भ में देवेश पथसरिया लिखते हैं – जितेन्द्र श्रीवास्तव की पुस्तकों के नाम से ही लगता है कि यह कवि मनुष्य एवं प्रकृति के बीच तादात्म्य की संभावना देखता है । 'मैं जा रहा हूँ दूब की शरण में' जैसी पंक्ति इस बात का सशक्त उदहारण है । पुतलियाँ कवि का एक प्रिय शब्द है। पुतलियाँ निश्चय ही मनुष्य एवं विरत ब्रह्माण्ड के बीच की योजक कड़ी है।[1] जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविताओं में प्राकृतिक दृश्यों के अद्वितीय सौंदर्य की महिमा का वर्णन किया गया है। वे प्रकृति के साथ अपनी अंतरात्मा के संबंध को दर्शाते हैं, जिससे पाठक को पर्यावरण की महत्ता का आदर्श अनुभव होता है।

उनकी कविताओं में प्राकृतिक तत्वों के संबंध को समझाने का प्रयास किया गया है। वे प्राकृतिक प्रक्रियाओं, जैसे कि वृक्षों की वृद्धि, पानी की धारा, और हवा की स्थिति को सार्थकता के साथ प्रस्तुत करते हैं। मानव जीवन प्राकृतिक तत्वों के अभाव में संभव नहीं है। प्रकृति ही है जो हमें जीवनदायिनी वायु,जल,अन्न प्रदान करती है और इसलिए कवि प्रकृति के प्रति कृतज्ञता का भाव व्यक्त करते हुए अपनी 'स्वाद' शीर्षक कविता में कहते हैं–

"लेते हुए मिठास लावे का याद किया मैंने/पूर्वांचल की साँवली धरती को/मटियार खेतों को और झुक कर प्रणाम किया ठेहुने के बल बैठ कर हाथ जोड़े/नारंगी आकाश की ओर टकटकी बाँधे/मैंने प्रार्थना की/खेतों से/पानी से हवा से, धूप से, खाद से मैंने अपनी मनोकामना जाहिर की अन्न से/और कहा कि मिलता

रहे उसका स्वाद/मेरी जीभ को मेरी आत्मा को। "[2]

जितेन्द्र श्रीवास्तव अक्सर प्रकृति के साथ व्यक्तिगत या सामाजिक संदेश को जोड़ते हैं, जो पाठकों को पर्यावरणीय मुद्दों पर विचार करने के लिए प्रेरित करता है। उनकी कविताओं में प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की महत्ता पर भावनात्मक रूप से ध्यान दिया गया है। वे प्रकृति के संरक्षण के लिए सामाजिक ज़िम्मेदारी और साझेदारी की अपील करते हैं। साथ ही इनकी कविताओं में प्राकृतिक और पर्यावरणीय तत्वों के साथ सांस्कृतिक अर्थ का भी अन्वेषण किया गया है। वे प्रकृति को संस्कृति के साथ जोड़कर मानवीय अनुभव को अधिक समृद्ध बनाते हैं- "सब जानते हैं/एक दिन कम पड़ जाएगी शक्ति पृथ्वी की/हमें पूरा-पूरा बचाने में /सब जानते हैं/मृत्यु पर किसी का वश नहीं/जैसे पैदा होना अपने वश में नहीं/ सब जानते हैं/उनके पास नहीं है हिसाब अपने पूरे जीवन का/फिर भी सब चाहते हैं/बचा रहे कुछ न कुछ/धरोहर की तरह उनके बाद/सब छोड़ जाना चाहते हैं/ बच्चों के लिए कुछ स्थायी स्मृतियाँ/कितना अच्छा होता/सब छोड़ जाते विरासत में /चुटकी भर हँसी/मुट्ठी भर कोमलता/अंकवारी भर प्यार।"[3]

कवि की कविताओं के विषय बहुत साधारण होते हुए भी अभिव्यक्ति की कुशलता से दृश्य चित्र बहुत सजीव बन पड़े हैं। ये अभिव्यक्ति की सजीवता इसलिए भी है क्योंकि ये कहीं न कहीं कवि की सघन अनुभूतियों के काव्य हैं। इसलिए इनमें कोई बनावटीपन नहीं है। इनकी "फिर आया बसंत" शीर्षक कविता में सर्दी की एक सुबह का स्वाभाविक वर्णन मन को बाँध लेता है -

"चढ़ती सर्दी के उस मौसम की एक सुबह
जब सूरज की किरणें
छू रही थीं उँगलियाँ पृथ्वी की
चूम रही थी उसका माथा सब और पसरा था जादू उजाले का
तब मैंने देखा था तुमको पहली बार"[4]

कवि ने यहाँ भारतीय सांस्कृतिक विविधता को भी ऐसे चित्रित किया है जो आज के भौतिकवादी, अर्थवादी, पदार्थवादी समय में जड़ता को छोड़ सामाजिक समन्वय के पक्ष में चेतना लाने का काम करते हैं। कवि की "जैसे हाथ हो दायाँ" शीर्षक कविता में यह देखा जा सकता है -

"अभी-अभी डूबा है सूर्य / उडुपि के खेतों में/ अभी - अभी आयी है साँझ/वृक्षों की पुतलियों में /अभी बिल्कुल अभी हँसे हैं नारियल के दरख्त/हमारी ओर देखकर/जैसे लगना बाहते हों गले/जैसे पहचान हो बहुत पुरानी / प्रिये, यह दक्षिण है देश का/ सुन्दर मनभावन जैसे हाथ हो दार्यों अपने तन का।"[5]

कवि के यहाँ पहाड़ों की पर्याप्त उपस्थिति देखी जा सकती है। ये पहाड़ इनकी कविताओं के विषय मात्र नहीं, इनके जीवन का हिस्सा भी है, इनकी आत्मा है। पहाड़ों को वे देश की ढाल मानते हैं। यहाँ रहने वाली युवतियों के गीतों से गुंजायमान हैं ये पहाड़, जो इसके सौन्दर्य को और बढ़ा रहे हैं -

"ये पहाड़ हैं प्रिये! देश की देह पर ढाल-से
यहाँ गाती हैं युवितयाँ मौसम के गीत करते हुए काम
गाती हैं मेरे गाँव के पहाड़ कितने सुन्दर हैं
इन दिनों दृश्य कितना मनोहर है ऐसे में फौजी पिया घर आ जा
दिल के करार आ जा जीवन के बहार आ जा।"[6]

जितेंन्द्र श्रीवास्तव का बिम्ब विधान भी उत्कृष्ट है। इनकी अनेक कविताओं में हमें इस शब्द चित्र के दर्शन भी होते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार- "बिम्ब ग्रहण वहीं होता है जहाँ कवि अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वस्तुओं के अंग- प्रत्यंग, वर्ण, आकृति तथा उनके आस – पास की परिस्थिति का परस्पर संश्लिष्ट विवरण देता है। बिना अनुराग के ऐसे सूक्ष्म ब्योरों पर न दृष्टि जा ही सकती है, न ही रम सकती है।"[7] जितेन्द्र श्रीवास्तव ने अपनी कविता 'कुछ दूर तक' में प्रकृति के साथ अपने मन के कार्य-व्यापार में भाव साम्य के बहुत ही सुन्दर बिम्ब उकेरे हैं -

"नदी के बीचो-बीच
उछलती है एक मछली

मेरा मन मेरे भीतर।
जल-तरंगें फैलती हैं चारों ओर मैं
कुछ दूर भावनाओं के साथ!"[8]

कवि के यहाँ प्रकृति का सुन्दर, सजीव तथा मनोहारी चित्रण हुआ है जो अपने आप में मौलिक है। प्रकृति के माध्यम से कवि ने प्रेम भाव की अभिव्यक्ति की है। प्रकृति उनके यहाँ बार - बार अपनों की स्मृतियों को मोड़ लाती है। प्रकृति का उद्दीपन रूप में प्रयोग द्रष्टव्य है -

"मई की एक भीगी भीगी सुबह में
पहाड़ों की ओर से
आ रही है शीतल मन्द बयार
कभी छू जाती है पलकों को कभी सहला जाती है बालों को
ऐसे में सिहरता है मन-नयन स्मृति से झाँकता है कोई याद आती हैं बिसरी बातें।"[9]

प्रकृति विविधरूपा है और भारत भूमि के विस्तृत भाग पर अवस्थिति के कारण इसमें तमाम विविधताएँ देखने को मिलती हैं। चूँकि कवि अपने कार्यभार के निर्वहण के लिए अनेक स्थलों पर रहे हैं तो उनकी स्मृतियों में वहाँ के दृश्य बसे हुए है। कवि ने अपने इसी जीवनानुभव को अपने काव्य का विषय बनाया है। ये इतने सजीव बन पड़े हैं कि इनकी कविताओं से गुज़रने के बाद ऐसा लगता है, मानो प्रकृति के अनेकों दृश्य पाठक की स्वयं की स्मृतियाँ हो। स्मृति के आधार पर प्राकृतिक विविधता का एक दृश्य देखिए–

'धारचूला की पहाड़ियों पर/चढ़ आयी होगी धूप/पिघल रही होगी बर्फ/पंचाचूली की चोटियों पर/सुन्दर झरने गिर रहे होंगे/बलुवाकोट मुनस्यारी में'[10]

ऐसी ही एक और स्मृति है जो डायरी के पन्ने पलटते हुए कवि की स्मृति में कौंध जाती है -

"पहाड़ों का रंग दर्ज है/ इस डायरी में/जंगल की हरियाली/ झाँक रही है/ शब्दों के बीच छूटी जगह से/ बिल्कुल ऊपर लिखा है/ "कालिदास" का मेघ जरूर गया होगा धारचूला होकर"[11]

कवि अपनी "शिमला में एक सुबह" शीर्षक कविता में फरवरी की सुबह की धूप की तुलना उस गर्माहट भरे हाथ से करता है 'जो प्रिय ने रखा हो प्रिय के कंधे पर।' कहने का तात्पर्य यह है कि फरवरी की सुबह की धूप ठीक उसी तरह सुखदायी है जैसे किसी प्रिय के हाथ कंधे पर पड़ते ही हमें अनुभूत होता है। यह वर्णन बहुत सुन्दर बन पड़ा है -

"फरवरी की एक सुबह शिमला में/इस तरह खिली धूप/जैसे प्रिय ने/चुपके से रख दिया हो अपना हाथ/प्रिया के काँधे पर।"[12]

ठण्ड के मौसम में पहाड़ों की एक शाम का वर्णन देखिए –

"फरवरी की इस शाम में/ कितना अकेला है रिज़/कितना चुप-चुप है पुरातन चर्च/उसकी पलकों पर ठहरी है बर्फ जैसे ठहरा हो समय।"[13]

ऊपर की पंक्तियों से स्पष्ट जाना जा सकता है कि पहाड़ों के शाम कैसे वीरान होते हैं। मैदानी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की आम धारणा होती है कि पहाड़ जैसे सुन्दर दिखते हैं, वहाँ का जीवन भी उतना ही सुन्दर होगा। अक्सर हमने जिन चीज़ों को नजदीक से नहीं देखा होता उसके बारे में परिकल्पना कर लेते हैं। कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव भी पहाड़ी जीवन से रू – ब – रू होने से पहले पहाड़ों पर रहने वाले लोगों को खुशनसीब समझते थे, लेकिन जब उन्हें वहाँ रहने का सुअवसर मिला कवि अपने उस समय के संघर्षपूर्ण अनुभव को साझा करते हुए, पहाड़ी जीवन के संघर्ष को व्यक्त करते हुए कहते हैं-

"कितने सुन्दर हैं पहाड़/ दूर से मैंने सोचा/कितने ख़ुशनसीब हैं यहाँ के लोग/ प्रकृति की गोद में रहते हैं/ मैं यहाँ आया बसने पहाड़/ जीवन पहाड़ हो गया/ सोचता हूँ कैसे रहते हैं लोग/ इतनी मुश्किलों में"[14]

कवि द्वारा रचित 'पहाड़' शीर्षक कविता जिसमें सात छोटी कविताएँ हैं, जो आठ –आठ पंक्तियों में निबद्ध हैं पहाड़ी जन जीवन के संघर्ष को

समझने की दृष्टि से काफी उत्कृष्ट हैं। यहाँ का आम जन मानस अपनी छोटी –छोटी ज़रूरतों के लिए भी हर दिन संघर्ष करता है। हम सभी जानते हैं कि अधिकांश नदियों के उद्गम स्थल ये पहाड़ ही हैं लेकिन जीवन के स्रोत जल के लिए भी यहाँ के आम जन हर दिन कितने-कितने किलोमीटर तक उतरकर नीचे आते हैं। कवि की कविताओं की प्रासंगिकता इसलिए भी बढ़ जाती है कि वे प्रकृति के सुन्दरतम रूप में ही नहीं उलझे रहते, इसके अन्य पक्षों को भी बराबर महत्त्व देते हैं-

"ये पहाड़ हैं नदियों के पिता/इनकी बेटियाँ सींच रहीं हैं मैदान/मैदानों के मैदान/पर इनके घर में ही नहीं है पानी।

बताओ राजेश्वरी विष्ट/कितने घंटे लग जाते हैं/पीने का पानी लेकर जाते हुए घर/कितना नीचे उतरती हो पानी के लिए।"[15]

प्रकृति में होने वाले परिवर्तन या घटने वाली सामान्य घटना को भी इस प्रकार चित्रित किया है जैसे कोई मानवीय कार्यव्यापार हो, यहाँ बादल और पृथ्वी के बीच अनादिकाल से चले आ रहे प्रेम, आशा और त्याग को निरूपित किया गया है-

"बादल टकरा रहे हैं दूसरे बादल से/समा रहे हैं एक दूसरे में/जैसे देह में समाती है कोई और देह/बरस जाएँगे बादल/पल भर में घुल जाएँगे धरती की देह में/ फिर हरा करेंगे पृथ्वी की कोख/अनादिकाल से अपने को मिटा रहे हैं बादल/अनादिकाल से पृथ्वी निर्निमेष ताक रही है बादलों को।"[16]

कवि की कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह अपने समय के साथ संवाद करती हुई चलती है या कहें कि उस यथार्थ का बयां करते हुए चलती है जिसे प्राय: लोग कविताओं में अनदेखा कर देते हैं। दूसरी विशेषता यह है कि ये समय से पूर्व ही समस्याओं की पहचान करने में समर्थ हैं। यही एक सच्चे कवि की पहचान है । आज जब पूरा विश्व पर्यावरणीय परिवर्तन को लेकर चिंताग्रस्त है आज से लगभग 30 वर्ष पूर्व (1994) में ही यह चिंता उनकी "इन दिनों हलचल" शीर्षक कविता में देखी जा सकती है -

"काँप रहा है दिन/और धूप भी पियराई है/न जाने कौन सी ऋतु आई है"[17]

मनुष्य और प्रकृति परस्पर एक-दूसरे से सम्बंधित है। मनुष्य के कार्य-व्यापार जहाँ एक ओर पर्यावरण पर असर डालते हैं वहीं इसके प्रतिक्रिया स्वरूप प्रकृति भी कहर करती है। कवि की 'धूप-तंत्र' शीर्षक कविता में मनुष्य द्वारा प्रकृति के अन्धाधुंध दोहन के परिणामस्वरूप प्रकृति के इसी विकराल रूप को देखा जा सकता है-

"त्राहि-त्राहि शीतलहर /शीतलहर त्राहि-त्राहि /दूर तक फैला समुद्र शीत का /कुछ न दिखे /कुछ न सूझे /धूप का पता नहीं /जाने कहाँ किस रजाई में /मुँह तोप कर सो गया है सूरज।"[18]

'जाड़ा' इसी प्रकार की एक और कविता है जिसमें जाड़े के मौसम में खेती बाड़ी से लेकर मनुष्य भी इसका कहर भोगने को विवश है-

"आलू के खेत पियरा गये/मार गया पाला/अँखुवाते ही लोच गयी डीभी गेहूँ की/उदास हो गयी सरसों की फसल/जो जहाँ भी रहा/मेरे गाँव में ठकुआ गया जाड़े में/कुछ भी नहीं सूझा/काठ मार गया सबको/विवश हो भोगते रहे सब लोग/मौसम का कहर।"[19]

आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी ने कहा है – "अनंत रूपों में, प्रकृति हमारे सामने आती है – कहीं मधुर, सुसज्जित या सुंदर रूप में, कहीं रूखे बेडौल या कर्कश रूप में, कहीं भव्य, विशाल या विचित्र रूप में, कहीं उग्र, कराल या भयंकर रूप में। सच्चे कवि का हृदय उसके इन सब रूपों में लीन होता है, क्योंकि उसके अनुराग का कारण अपना सुख – भोग नहीं, बल्कि चिरसाहचर्य द्वारा प्रतिष्ठित वासना है।"[20] इन विचारों के संदर्भ में प्रकृति के विविध रूपों का अंकन इनकी कविताओं में हमें देखने को मिलता है और इस दृष्टि से इनकी कविताओं का अध्ययन प्रकृति और पर्यावरणीय चेतना के अनुशीलन के लिए एक मूल्यवान स्रोत है। उनकी कविताओं में प्रकृति और मानव के संबंध की गहराई और समृद्धता को समझने के माध्यम से, हम अपने पर्यावरण में साझेदारी और समर्थन की भावना को बढ़ा सकते हैं। उनकी कविताएँ बिना किसी लाग–लपेट के हमें भविष्य

के प्रति सचेत करती हैं। युवा आलोचक मृत्युंजय पाण्डेय लिखते हैं – "जितेन्द्र श्रीवास्तव की तरह ही उनकी कविताएँ भी अपने पाठकों से धधाकर मिलती हैं। वे एक आत्मीय की भाँति सहज-सरल रूप से अपने पाठकों से बतियाती हैं, गप्प लड़ाती हैं, हालचाल पूछती हैं और भविष्य के प्रति आगाह करते हुए चेतावनी भी देती हैं। इनकी कविताओं को समझने के लिए दिमागी कसरत की ज़रूरत नहीं पड़ती। 'बूझो तो जाने' वाली बात इनके यहाँ नहीं है।"[21]

निष्कर्ष

जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविताओं में अभिव्यक्त प्रकृति का अनुशीलन करने से हमें यह संदेश मिलता है कि हमारा संबंध प्रकृति से केवल भौतिकीय नहीं है, बल्कि हमारी आत्मा और मानवीय संबंधों का भी एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। उनकी कविताओं में प्राकृतिक रूप से सांस्कृतिक, धार्मिक, और आध्यात्मिक आयामों का अन्वेषण किया गया है, जो हमें पर्यावरण के साथ हमारा संबंध दोबारा समझने के लिए प्रेरित करता है। इनकी कविताएँ हमें प्राकृतिक संसाधनों के प्रति जागरूक बनाती हैं, जो हमारे और हमारे आसपास के पर्यावरण के लिए महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भ

1.https://samkaleenjanmat.in/poems-by-jitendra-srivastava/

2. जितेन्द्र, श्रीवास्तव. "उजास". सेतु प्रकाशन प्रा. लि., दिल्ली, प्र.सं.2019,पृ. 39

3.वही पृ. 112

4.जितेन्द्र, श्रीवास्तव. "बिल्कुल तुम्हारी तरह". भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,नयी दिल्ली, प्र.सं.2011,पृ. 85

5.वही पृ. 78

6.वही पृ. 66

7.शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. "चिंतामणि". लोक भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ. 86

8.जितेन्द्र, श्रीवास्तव. "बिल्कुल तुम्हारी तरह". भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं.2011 पृ. 59

9. वही, पृ. 47

10.जितेन्द्र, श्रीवास्तव. "उजास". सेतु प्रकाशन प्रा. लि., दिल्ली, प्र.सं.2019, पृ.17

11.जितेन्द्र, श्रीवास्तव. "कवि ने कहा ". किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं. 2016 .पृ. 62

12.जितेन्द्र, श्रीवास्तव. "बिल्कुल तुम्हारी तरह". भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं.2011.26

13.वही पृ. 27

14.जितेन्द्र, श्रीवास्तव. "उजास". सेतु प्रकाशन प्रा. लि., दिल्ली, प्र.सं.2019, पृ. 50

15.वही पृ. 50

16.श्रीवास्तव, जितेन्द्र. "जितनी हँसी तुम्हारे होठों पर". सेतु प्रकाशन प्र.लि.,नोएडा, प्र. सं.2022 .पृ. 165

17.श्रीवास्तव, जितेन्द्र. "उजास". सेतु प्रकाशन, प्रा. लि. प्र. सं. 2019, पृ. 248

18.जितेन्द्र, श्रीवास्तव. "उजास". सेतु प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, प्र.सं.2019,पृ. 191

19.वही पृ 114

20.शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. "चिंतामणि". लोक भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ. 86 - 87

21.मृत्युंजय,पाण्डेय. "कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव".(भूमिका से), कल्पना प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.2017.

◆शोधार्थी ,लवली प्रोफेशनल युनिवर्सिटी, फगवाड़ा,पंजाब।

ई. मेल-Poojakushwaha5593@gmail.com

मो. 9140836100

◆◆सह अध्यापक ,लवली प्रोफेशनल युनिवर्सिटी, फगवाड़ा,पंजाब

ई. मेल-mrvinodsharma750@gmail.com

नारी-अस्मिता: समकालीन हिन्दी कविताओं के विशेष संदर्भ में

◆दिलीप सिंह राजपूत

शोध सार- आसमान-सा विशाल मन, पृथ्वी-सी सहनशीलता, सागर-सी गहराई, पर्वत-सा धैर्य अगर किसी में है तो वह है, स्त्री। आज की स्त्री घर और बाहर दोनों जगहों पर अपनी ज़िम्मेदारियाँ निभाते हुये अपनी पहचान बना रही है। वह पहले से थोड़ी और सजग हुई है और आत्मनिर्भर भी। स्त्री का आत्मनिर्भर, आत्मसजग होना उसका नया लोक है, उसका नया प्रस्थान भी। वह स्वयं की साधना, संयम एवं परिश्रम से पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलते हुए निरंतर नये आयाम बनाने को तत्पर है। समकालीन हिन्दी कविता स्त्री के इन्हीं संघर्षों,चुनौतियों एवं विविध पहलुओं की गहरी पड़ताल करती नज़र आती है।

समकालीन कविता ने स्त्री की भूमिका को इस दौर में समझने,विचारने की ज़हमत उठाई है। यहाँ स्त्री की जीवंत और संघर्ष कर रही छवियों की तलाश दिखाई पड़ती है,स्त्री के निर्विकार व निःशब्द जीवन की शब्दशः अभिव्यक्ति मिलती है। समकालीन कवियों ने रसोई और बिस्तर के गणित से परे हटकर स्त्री संवेदना और भावना से जुड़कर अपनी कविताओं को तराशा है।

बीज शब्द- अस्मिता, नारी, समकालीन, विमर्श, संवेदना, यातना, असमानता, मर्यादा, अभिव्यक्ति, सामाजिक, उत्पीड़न आदि।

मूल आलेख-समकालीन कविता ने नयी कविता और अकविता की ज़मीन को तोड़कर स्त्री सरोकारों की फसल लहलहाई है। छायावादी कविता में स्त्री केवल प्रेयसी थी, वह कवि कल्पना और मनोभावों से उपजी थी। नयी कविता का आग्रह हाड़-मांस की सजीव स्त्री को कविता में चित्रित करने का था,लेकिन कवियों की मनोरचना व्यक्तिनिष्ठ थी, इसलिए यहाँ भी जो स्त्री चित्रित है, वह पुरूष-दृष्टि से देखी,जानी-पहचानी गई स्त्री है।तदन्तर अकविता में स्त्री का घोर सरलीकरण हुआ- वह महज एक शरीर होकर रह गई। 1975 के बाद जो जनवादी-काव्यधारा प्रवाहित हुई, जिसे हम समकालीन कविता कहते हैं, वहाँ एक आम भारतीय स्त्री के दैनिक जीवन की यातना, संत्रास, दुःख, संवेदनाओं की अभिव्यक्ति मिलती है। समकालीन कवियों ने स्त्री को उसकी वस्तुस्थिति में समझने का प्रयास किया, उसके संघर्षों, चुनौतियों की बेहतर पड़ताल की। समकालीन कवियों में अरुण कमल, राजेश जोशी, इब्बार रब्बी, मंगलेश डबराल, उदय प्रकाश, नरेन्द्र जैन, असद जैदी, विष्णु नागर, बोधिसत्व, निलय उपाध्याय, एकान्त श्रीवास्तव, अष्टभुजा शुक्ल, बद्री नारायण सरीखे कवियों ने स्त्री जीवन के विविध पहलुओं को बेहद सादगी और सच्चाई के साथ अपनी कविताओं में उजागर किया है। साथ ही अन्तिम दशक में उभरी कवयित्रियों ने भी स्त्री के दुःख-दर्द, संत्रास, पीड़ा, संघर्ष, साहस,जीवन की अभिव्यक्ति कोअपनी-अपनी कविताओं का प्रमुख स्वर बनाया है जिनमें अनामिका, गगनगिल, कात्यायनी आदि प्रमुख हैं। वर्तमान में रश्मि भारद्वाज, गीताश्री, बाबूशा कोहली, स्वाती मलकानी, अनुराधा शर्मा सरीखी कवयित्रियों की कलम से समकालीन स्त्री-विमर्श का नया स्वर उभर रहा है।

लिंग अनुपात में असमानता,लड़कियों की संख्या में कमी, आज भारत की ही नहीं विश्व की भी बड़ी समस्या है,फिर भी कन्या भ्रूण हत्या का सिलसिला थम नहीं रहा है। धीरे-धीरे कुछ लोगों की मानसिकता में परिवर्तन तो आया है,परन्तु आज भी बड़ी संख्या में ऐसे परिवार मौजूद हैंजहाँ कन्या के जन्म पर प्रत्यक्ष उदासी छा जाती है। आँकड़े बताते हैं कि साल में 10 लाख बच्चियों की हत्या गर्भ में ही कर दी जाती है। वैश्वीकरण की इससे बड़ी विडंबना क्या होगी कि जो राज्य जितने अधिक विकसित हैं, मसलन पंजाब, गुजरात, हरियाणा, नई दिल्ली,कन्या-भ्रूण हत्या का दर उतनी ही ज़्यादा है। यह स्थिति तब है जब लिंग की जाँच को कानूनन अपराध की श्रेणी में रखा गया है। कन्या भ्रूणों की हत्या के आँकड़े समूचे वैधानिक प्रतिबंधों के बावजूद दिन-रात बढ़ रहे हैं। यह हमारी हिंसा की मनोवृत्ति भर नहीं है, बल्कि यह स्वार्थपरताओं का भयावह रूपक भी है।

कवि उदय प्रकाश 'औरत' शीर्षक कविता में इस स्थिति का अत्यन्त मार्मिक चित्रण करते हुए कहते हैं-

"हज़ारों-लाखों छुपती हैं गर्भ के अंधेरे में
इस दुनिया में जन्म लेने से इंकार करती हुई
वहाँ भी खोज लेती है उन्हें भेदिया ध्वनि तरंगें
वहाँ भी, भ्रूण में उतरती है हत्यारी कटार।"[1]

- यह आज के समय की एक सच्चाई है। समकालीन कविता हमें इस सच्चाई से रूबरू करवाती है तथा उसके भयंकर परिणाम सामने आने से पहले हमें चेत जाने के लिए आगाह भी करती है। कुलीन परम्पराओं और पुरुष वर्चस्ववादी व्यवस्था के चलते स्त्री ने सदियों से एक चुप्पी ओढ़ ली। उसके मौन को उसकी कमज़ोरी मान कर उसपर अत्याचार किया जाने लगा। धीरे धीरे यही मौन-उसके व्यक्तित्व में रच की बस गया। वह सब कुछ चुपचाप सहन करने-आदी हो गयी।

समकालीन कवि अरुण कमल अपनी कविता 'एक बार भी बोलती' में ऐसी ही स्त्री की पीड़ा को व्यक्त करते हैं जो चुपचाप सारी यातनाओं को सहती जाती है-

"मैंने उसे बुरी तरह डांटा
फिर भी वह कुछ नहीं बोली रोयी भी नहीं
अभी भी मैं समझ नहीं पाया
किवह कभी बोली क्यों नहीं।"[2]

यहाँ कवि को उसकी सहनशीलता पर आश्चर्य भी होता है। साथ ही उसकी इस स्थिति पर क्षोभ भी। दरअसल सदियों से पितृसत्तात्मक समाज ने उसे मृदुभाषी,मितभाषी होने का पाठ पढ़ाया और अपनी सुविधा हेतु उससे अभिव्यक्तिका अधिकार भी छीन लिया और स्त्री इस स्थिति को अपनी नियति मान बैठी।

अमृता प्रीतम के शब्दों में कहें तो-
उगी हूँ,पिसी हूँ,बेलन से बिली हूँ
आज गर्म तवे पर जैसे चाहो उलट लो!
....अन्नदाता!
मेरी जबान ओर इन्कार
यह कैसे हो सकता है।"[3]

अभिव्यक्ति का अधिकार न मिलने पर उसका आत्मविश्वास भी चूर-चूर हो गया। विवाह के कई वर्षों बाद भी वह पति की पिछलग्गू बनी रहती है। कवि लीलाधर जगूडी लिखते हैं-

"अकेली औरत पार करना चाहती है सूनी सड़क
टांगे बढ़ चुके पति को पीछे बुलाती है
जे कि लौट आता है गुस्से और कोफ़्त से
अकेली औरत शादी के तीस वर्ष बाद भी
पूछती है सड़क पार कर लूँ।"[4]

इस तरह खुद को कमज़ोर,असहाय समझने लगी और अपने निर्विकार जीवन की आदी औरत अणुवत अकेली होती गयी। वह अपने गृहस्थ जीवन के साथ-साथ पति के लिए अपने सुख,इच्छाओं का भी त्याग करती गयी।

कवि मंगलेश डबराल ने 'स्त्रियाँ' शीर्षक कविता में स्त्री के इसी त्याग,समर्पण एवं सहनशीलता का वर्णन करते हुए लिखा है-

"एक आँख से हँसती एक से रोती हुई
वह फिर से आ पहुँचती है पुरूष के सामने
जैसे उसका कुछ न छीना गया हो
जैसे वह उसी तरह करती आ रही हो प्रेम।"[5]

यह सत्य है कि त्याग, समर्पण, क्षमा, प्रेम आदि स्त्रियोचित गुण हैं परन्तु कब तक स्त्री अपने स्वप्नों का गला घोंटती जाएगी? यह एक बड़ा प्रश्न है। समकालीन कवियों ने स्त्री के भीतर अपरिभाषित अपार जीवन को हिलोरें मारते देखा और महसूस किया।स्त्री-विमर्श और नारी जागरण के चौ तरफा विमर्श की रोशनी में भी यातना और उत्पीड़न के अंधकार में जीती हुई कितनी ही स्त्रियाँ अभी भी हैं, जो मुक्ति का स्वप्न देखती हुई जीवित हैं।

समकालीन कविता में कात्यायनी एक भूतपूर्व नगरवधू की दुर्गपति से प्रार्थना में ऐसी ही तड़पती इच्छाओं के बारे में बताते हुए कहती हैं –

"एक वृक्ष के तने से पीठ टिकाकर
कम से कम एक बार
भले हीवह ज़िंदगी में आखिरी बार हो
अपने मन से एक गीत गाना है मुझे
जिसकी कभी किसी ने फरमाइश न की हो।
जलते रेगिस्तान में ही सही
कम से कम एक बार मैं
अपने लिए नृत्य करना चाहती हूँ।"[6]

एक बार अपने लिए जी लेने की इच्छा-कवि

अष्टभुजा शुक्ल स्त्री की ऐसी ही इच्छाओं का जिक्र करते हैं कि सारा जीवन नरक में बिताने की कीमत चुकाकर भी वे- "एक बार दिल खोलकर खिलखिलाना चाहती थी/और सारा जीवन बिलखने को भी तैयार थीं/पर एक बार फफककर रोना चाहती थीं।"[7]

चन्द्रकांत देवताले की कविता 'मेरा एक सपना यह भी'में रोज़मर्रा के जीवन में घटती-रचती एक आम भारतीय स्त्री का वर्णन मिलता है, जहाँ स्वयं कवि का यह सपना है कि काश नींद में भी वह सुख से रह पाती,पर सोते वक्त भी अपने माथे की वो सलवटें नहीं मिटा पाती-

"सुख से पुलकने से नहीं
रचने-घटने थकने से,सोई है स्त्री
नींद में हँसते देखना उसे
मेरा एक सपना यह भी
पर वह तो माथे की सलवटें तक
नहीं मिटा पाती
सोकर भी।"[8]

असद जैदी की कविता 'बहनें'में विवाह के बाद स्त्रियों की दशा का वर्णन मिलता है, जहाँ भाइयों के प्रति आत्मनिवेदन के माध्यम से बहनों के जीवन-यथार्थ को सामने लाते हैं-

"कोयला हो चूकी हैं हम
बहनों ने कहा रेत में धँसते हुए
ढंक दो अब हमें चाहे
हम रूकती है यहाँ तुम जाओ
शाप की तरह आती थी हमारी बर्राती हुई
जिंदगियों में बहनें ट्रैफिक से भरी सड़कों पर
मुसीबत होकर सिरों पर मंडरातीथीं
लडकियाँ है हम लड़कियाँ।"[9]

इस कविता पर टिप्पणी करते हुए परमानंद श्रीवास्तव ने ठीक ही लिखा है-"असद जैदी की कविता, स्त्री के प्रति करुणा को जिन दूसरे अनुभवों से जोड़कर मूर्त करती है, उनमें स्त्री के बहाने एक पूरा संसार खुलने लगता है।"[10]

"दुलारी धिया" शीर्षक अपनी प्रसिद्ध कविता में बद्रीनारायण ने भारतीय लोक परंपरा को उपस्थित करते हुए विवाह के उपरान्त स्त्री के संघर्षों की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। आँगन में कूदती-खेलती, माँ-बाबुल की दुलारी धिया विवाह के बाद किस दुःख,संत्रास,पीड़ा से गुज़रती है,इसका वर्णन करते हुए वे कहते हैं-

"पी घर में राज करोगी दुलारी धिया
दुलारी धिया, दिन-भर
धान उसीनने की हँड़िया बन
चौमुंहे चूल्हे पर धीकोगी
अकेले में कहीं छुप के
मैके की याद में दो-चार धार फोड़ोगी।"[11]

आज़ादी के इतने सालों बाद भी स्त्रियाँ सही मायने में स्वतंत्र नहीं हो पायी हैं। नरेन्द्र जैन अपनी एक कविता में आठ साल की सावित्री का जिक्र करते हैं, जिसके लिए आज़ादी का अर्थ जूठे बर्तनों के सिवा और कुछ नहीं है। यहाँ कविता, विकास की दौड़ में तेज़ी से आगे भागते भारत की चमचमाती तस्वीर के पीछे की कहानी को व्यक्त करती है-

"वक्त के इस लम्बे दौर में
बदलती गई दुनिया
आठ बरस की सावित्री
फिर भी तपती धूप और भीषण जाड़े में
बर्तन माजती है
आजादी का अर्थ
फिर भी सावित्री के लिए नहीं होगा
थालियों के जूठन से ज्यादा।"[12]

स्त्रियों के प्रति घर और समाज में बढ़ती हिंसा अपने समय की एक बड़ी त्रासदी है जिसकी शिकार पढ़ी-लिखी,अनपढ़ सभी महिलाएँ हैं।ताज्जुब की बात यह है कि घरेलू हिंसा को कानूनन अपराध माना गया है,बावजूद इसके यह अपराध अब भी थमने का नाम नहीं ले रहा है। स्त्रियों के प्रति अपराध, हिंसा, यौन-उत्पीड़न निरंतर बढ़ता ही जा रहा है। सदियों से स्त्री को वस्तु,पुरुष के हाथों की सम्पत्ति ही मानने वाले पुरूष-सत्तात्मक समाज पर व्यंग्य करती हुई कवयित्री रंजना जायसवाल कहती हैं-

"मैं पुरूष हूँ और जब मैं पुरूष हूँ
तो स्त्री सम्पत्ति है मेरी
खरीदूँ,बेचूँ, बंधक रखूँ
मारूँ,जलाऊँ या नष्ट करूँ
यह मेरी मर्जी है वैसे भी इससे अधिक क्या
उपयोग है स्त्री का।"[13]

स्त्री है जो पुरूष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलना चाहती है,एक पुरुष है जो कंधे तक आयी स्त्री के आगे न बढ़ जाने के डर से उसे दबाने-डराने की भरसक कोशिश में लगा रहता है। परिवार और समाज द्वारा की जाने वाली हिंसा इसी का एक रूप है।समकालीन कविता इस पर व्यंग्य के ज़रिये अपने तेजाबी प्रश्नों की बौछार करती है। इसका विरोध करती है, अस्वीकृति दर्ज करती है।

घरेलू हिंसा की शिकार पढ़ी-लिखी,कामकाजी स्त्रियाँ भी हो रही हैं। वे सदियों की चुप्पी और खोखली मर्यादाओं का निर्वाह करते हुए पुरुष का अमानवीय व्यवहार सहने को विवश हैं। कात्यायनी के कविता के सहारे कहें तो-

"वे/हमें/हमारे वजूद की/याद दिलाते हैं/अहसास कराते हैं/एक वजूदवालीऔरत को/प्यार करने का/उस पर काबूकरनेका/ मजा ही कुछ और है।"[14]

कुमार अम्बुज की कविता 'किवाड़'भी समाज की वहशी वासनाओं से भरे उन पुरुषों का पर्दाफाश करती है जिनके लिए स्त्री मात्र एक खिलौना है चाहे उनकी उम्र भले ही गुड्डे-गुड़ियों के खेलने वाली क्यों न हो।

आज के संवेदनहीन समय का समाज, स्त्रियों के लिए और भयावह एवं क्रूर होता जा रहा है। तेज़ी से पाँव पसारते बाजारवाद ने स्त्रियों की स्थिति को और अधिक दयनीय बना दिया है। बाज़ार और मीडिया ने स्त्री के लिए एक नया रीतिशास्त्र रच दिया है,वहाँ विक्रेता भी वही है और वस्तु भी वही। कात्यायनी के शब्दों में कहें तो-"आज पूँजी चरित्र में भारतीय सामाजिकी-सांस्कृतिकी को इस उत्तर समाज में रुग्ण और बीमार बना दिया है जिसकी सर्वाधिक शिकार स्त्रियाँ हैं।"

निम्न वर्ग की कामकाजी,आदिवासी महिलाओं की स्थिति तो और अधिक दयनीय है। उन्हें भी पूँजीवाद विकृति के शिकार पुरुषों की हिंसा झेलनी पड़ती है-

"डाक बंगले में आदिवासी भील कन्या
होनी चाहिए यहाँ
आयें यहाँ के जनजीवन के अंग हैं
पर्यटकों के लिए
नौकरानी ऐसी हो
कि हर बात में हँसे खिलखिलाकर
जंगली फूल चिटक गये हों।"

समकालीन कविता में पुरुष मानसिकता का चित्रण भी मिलता है और समाज के लिए सीख भी मिलती है कि स्त्रियों के प्रति अपना दृष्टिकोण, अपना नज़रिया बदलें। नारी कोई चीज़, कोई वस्तु नहीं है,वह भी इंसान है।

अनामिका की कविता 'कहती हैं औरतें' कुछ यही बयान करती है-

"भोगा गया हमको
बहुत दूर के रिश्तेदारों के दुःख की तरह
एक दिन हमने कहा
हम भी इंसान हैं।
हमें भी कायदे से पढ़ो एक-एक अक्षर
जैसे पढ़ा होगा बी.ए. के बाद नौकरी
का पहला विज्ञापन।"[15]

समकालीन कवि ने स्त्री जीवन के तमाम संघर्षों को परखते हुए, उसकी भावनाओं से गहरे हुए उसके मर्म को आत्मसात करते हुए अपनी लेखनी चलाता है। कहीं तो वह स्त्री दुःखों के बरअकस अपनी कविता को अपर्याप्त मानता है।

इब्बार रब्बी अपनी कविता 'रोती हुई औरत' में लिखते हैं-

"मैं भींग रहा था,
वह रो रही थी।
ढीला हुआ तनाव,
चाहकर भी पोंछ नहीं सका आँसू।
यही,बिल्कुल सही,
कविता लिखता रह गया।"[16]

स्त्री देवी है,गौरवशाली है,पूज्य है ये सारे शब्द तब तक बेमानी होंगे जब तक स्त्री को उसके सम्मान के साथ स्वीकार नहीं किया जायेगा।इस तरह के 'आप्त वाक्यों' से स्त्री का भविष्य नहीं सँवर सकता।

निष्कर्ष- स्त्री सदियों से महत्वपूर्ण होते हुए भी हाशिये पर डाल दी जाती रही है, उसे हमेशा से अपमान, उत्पीड़न, हिंसा का शिकार होना पड़ा है। मीरा के रूप में हमारे सामने ऐतिहासिक सच्चाई मौजूद है। स्त्री को उपदेश और नसीहतें तो असंख्य मिलीं, लेकिन प्रेरणा और आश्वासन बहुत कम मिला। समकालीन कविता ने न सिर्फ स्त्री के संघर्षों, चुनौतियों को व्यक्त

किया है बल्कि उसकी संवेदनाओं से गहराई से जुड़ते हुए स्त्री मन को विश्वास की रोशनी से सराबोर करने का प्रयास भी किया। इस कठिन समय में समकालीन कविता स्त्री को मनुष्य के रूप में स्थापित करने की जद्दोजहद के साथ उपस्थित होती है।

संदर्भ सूची

1. प्रकाश, उदय, रात में हारमोनियम, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण-2015, पृष्ठ-31.

2.कमल, अरूण, सबूत(काव्य संग्रह) 'एक बार भी बोलती'(कविता), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1989, नवीनतम संस्करण-2004, पृष्ठ-9.

3. विश्वास, विनय, आज की कविता, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2009, पृष्ठ-124.

4. जंगूड़ी, लीलाधर, भय भी शक्ति देता है, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण-2007, पृष्ठ-92.

5. डबराल, मंगलेश, आवाज भी एक जगह है (काव्य संग्रह) 'स्त्रियां'(कविता), प्रथम सस्करण-2000, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ-16.

6. कात्यायनी, इस पौरुषपूर्ण समय में (काव्य संग्रह), परिकल्पना प्रकाशन, प्रथम संस्करण-1999, पृष्ठ-65.

7. शुक्ल, अष्टभुजा, दुःस्वप्न भी आते हैं (काव्य संग्रह), राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2004, पृष्ठ-113.

8.देवताले,चंद्रकांत, लकड़बग्घा हँस रहा है(काव्य संग्रह) 'मेरा एक सपना यह भी'(कविता), संभावना प्रकाशन रेवतीकुंज हापुड़, प्रथम संस्करण-1980,पृष्ठ-17.

9. जैदी, असद, सरे-शाम(काव्य संग्रह) 'बहनें'(कविता), आधार प्रकाशन पंचकुला हरियाणा, संस्करण-2014, पृष्ठ-34.

10. श्रीवास्तव, परमानन्द, समकालीन कविता का यथार्थ, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़; प्रथम संस्करण, पृष्ठ-236.

11. नारायण बद्री, सच सुने कई दिन हुए(काव्य संग्रह) 'दुलारी धिया'(कविता), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-1994, पृष्ठ-51.

12.https://www.hindisamay.com/content/11365/1/लेखक-नरेंद्र-जैन-की--सावित्री.cspx

13.गुप्ता, रमणिका (संपादक), युद्धरत आम आदमी(मासिक पत्रिका) नई दिल्ली, अंक-90, जनवरी-मार्च-2008, पृष्ठ-43.

14. कात्यायनी, 'जादू नहीं' कविता(काव्य संग्रह), वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2002, पृष्ठ-94.

15. अनामिका, कहती हैं औरतें, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2022, पृष्ठ-146.

16. रब्बी, इब्बार, कवि ने कहा (काव्य संग्रह) 'रोती हुई औरत'(कविता), किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण-2012, पृष्ठ-121

◆ शोधार्थी, पी-एच.डी. हिन्दी विभाग,
कला एवं मानविकी अध्ययनशाला,
मैट्स विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)।
मो. 9098771548।
ई. मेल- dilip61286@gmail.com

बंगाली- मलयालम अनुवादेतिहास एवं परिसंवादः परंपरा का प्रभाव

◆ डॉ. मोहनन वी टी वी

बंगाली से मलयालम में विविध विधाओं की रचनाएँ अनूदित हुई हैं और उनमें उपन्यासों के अनुवाद अधिक हैं।

बीज शब्द – बंगाली उपन्यास, अनुवाद।

"सन् 1858 में जॉसफ पीट ने कैतरीन हन्ना मुल्लन्स की 'फुलमानी ओर कोरुणा नामक दो स्त्रियों की कहानी' का मलयालम में अनुवाद किया जो बंगाली से मलयालम में अनूदित प्रथम उपन्यास है।"[1] अन्य

भाषाओं से मलयालम में अनूदित रचनाओं की तुलना में बंगाली- मलयालम अनूदित रचनाओं की संख्या सबसे आगे है।

बंगाली- मलयालम अनुवाद की परंपरा की शुरुआत मलयालम की पत्रिकाओं से होती है। इस क्षेत्र में 'जनयुगम्' साप्ताहिकी का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है। सन् 1960 में 'जनयुगम्' में बंगाली- मलयालम अनुवाद- श्रृंखला में पहली बार बंगाली उपन्यास का अनुवाद छपकर आया। बंगाली उपन्यासकार बिमल मित्रा के उपन्यास का अनुवाद एम. एन. सत्यार्थी ने किया जो 'जनयुगम्' साप्ताहिकी में प्रकाशित हुआ। पी. गोविंदन पिल्लै ने आशापूर्णा देवी के उपन्यास 'प्रथम प्रतिश्रुति', 'सुवर्णलता', 'बकुल की कहानी' आदि का अनुवाद किया जो 'मातृभूमि' साप्ताहिकी में प्रकाशित हो आया। गोविंदन पिल्लै ने इनका अनुवाद हिन्दी से मलयालम में किया। एम. एन सत्यार्थी, के.रविवर्मा, वी. उण्णिकृष्णन नायर, लीला सरकार, निलीना एब्रहाम्, एम. पी कुमारन आदि अनुवादकों ने बंगाली से मलयालम में अनेक रचनाओं का अनुवाद किया। आरोग्य निकेतन (ताराशंकर बैनर्जी), पावकलियुटे कथा (मणिक बैनर्जी), गोरा, योगायोग (रवींद्रनाथ ठाकुर) अपराजित, आदर्श हिन्दू होटल, आरण्यकम् (विभूतिभूषण बंदोपाध्याय), उरंगात्ता रात्रि (सतीनाथ भादुमी), किनु गोयाला तेरुवु (संतोष कुमार घोषाल), आत्मप्रकाशम् (सुनिल गंगोपाध्याय) आदि मलयालम में अनूदित रचनाएँ हैं। लीला सरकार तथा एम. एन सत्यार्थी ने क्रमशः तेईस तथा बीस उपन्यासों का अनुवाद मलयालम में किया। "अंग्रेज़ी में अनूदित बंगाली उपन्यासों के मलयालम में अनुवाद की बारी आती रही। पुत्तेप्पत्तु रामन मेनन, आर. नारायण पणिक्कर आदि का योगदान महत्वपूर्ण है।"[2]

बंकिम चंद्र चैटर्जी के उपन्यासों के छत्तीस अनुवाद मलयालम में प्राप्त हैं। शरतचंद्र चैटर्जी के उपन्यासों के मलयालम अनुवादों की संख्या पचास है। ताराशंकर के अट्ठावन उपन्यासों में दस उपन्यास मलयालम में अनूदित हुए हैं। सी. एस सुब्रह्मण्यन पोट्टी ने 'दुर्गेश नंदिनी' का मलयालम में अनुवाद किया, जो 'भाषापोषिणी' पत्रिका में प्रकाशित हुआ। तदुपरांत बंकिम चंद्र की अनेक कृतियों का मलयालम में अनुवाद हुआ। पी. के सुकुमारन ने सन् 1995 में 'आनंद मठ' का मलयालम में अनुवाद किया। बंगाल के प्रथम ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता ताराशंकर बैनर्जी के 'आरोग्य निकेतन' तथा 'एषुचुवटु' का मलयालम में अनुवाद सन् 1961 में हुआ। मणिक बैनर्जी के दो उपन्यास मलयालम में अनूदित हैं। मछुआरों के जीवन पर आधारित 'पद्मा नदीर माझी' का अनुवाद (पद्मा नदियिले मुक्कुवन) सन् 1957 में रविवर्मा ने किया। विभूति भूषण बंदोपाध्याय के उपन्यासों के सात अनुवाद मलयालम में प्रकाशित हुए हैं। उनका उपन्यास 'पाथेर पांचाली' का मलयालम में फिल्म भी हुआ। 'पाथेर पांचाली' का अनुवाद रविवर्मा ने सन् 1977 में किया। पी. वासुदेव कुरुप्प ने सन् 1986 में 'आरण्यक' का अनुवाद किया। केरल साहित्य अकादमी ने इसका प्रकाशन किया।

केरलवासियों का प्रिय बंगाली उपन्यासकार बिमल मित्रा के उपन्यासों के सत्रह अनुवाद प्रकाशित हुए। बिमल मित्रा एवं आशापूर्णा देवी के उपन्यासों का अनुवाद शुरुआत में पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर आया जिसके कारण उनके पाठकों की संख्या बढ़ गयी। आशापूर्णा देवी के छः उपन्यास मलयालम में अनूदित हैं। ज्ञानपीठ पुरस्कार की प्राप्ति के बाद महाश्वेता देवी के उपन्यासों का अनुवाद प्रकाशित होने लगा। लीला सरकार ने तपन्टे अम्मा, रुदाली, वंशवृक्षम्, सत्यम् असत्यम् तथा के. कृष्णन कुट्टी ने श्री गणेश महिमा का अनुवाद किया। सावित्री राय के उपन्यास का मलयालम अनुवाद 'नेल्लिन्टे गीतम्' का प्रकाशन सन् 1974 में हुआ। एम. एन सत्यार्थी ने सावित्री राय के चार उपन्यासों का मलयालम में अनुवाद किया। 'आरण्यत्तिन्टे अधिकारम्' का अनुवाद सन् 1992 में हुआ। तस्लीमा नस्रीन के 'लज्जा' का अनुवाद सन्

1906 में टी. ए अमीर ने किया। के. रविवर्मा ने छब्बीस उपन्यासों का मलयालम में अनुवाद किया। लीला सरकार तथा एम. एन सत्यार्थी ने क्रमशः तेईस तथा बीस उपन्यासों का अनुवाद मलयालम में किया। के. रविवर्मा, लीला सरकार, एम. एन सत्यार्थी, एम. पी कुमारन तथा वी उण्णिकृष्णन नायर की मातृभाषा मलयालम है और उन्होंने बंगाली सीखी। निलीना एब्रहाम ने मलयालम से बंगाली में अनुवाद किया। पूर्वी बंगाल के तस्लीमा नस्रीन, इंदू साहा, शौकत उस्मान, सेलीना हुसैन आदि के उपन्यासों का मलयालम में अनुवाद आये। एम. एन सत्यार्थी ने बिमल मित्रा के उपन्यासों का अनुवाद किया जो 'जनयुगम्' साप्ताहिक में प्रकाशित हुआ। जब बंगाली से 'विलक्कु वांगाम्', 'इरुपताम् नूट्टांडु', 'प्रभुक्कलुम भृत्यन्मारुम' आदि शीर्षकों में बंगाली उपन्यासों के मलयालम अनुवाद साप्ताहिकों में आने लगे तब पत्रिकाओं के पाठकों की संख्या में काफी बढ़ोत्तरी हुई। मातृभूमि, जनयुगम् आदि पत्रिकाओं ने इस क्षेत्र में काफी योगदान दिया।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि चाहे बंगाली से मलयालम में अनेक उपन्यासों के अनुवाद हुए हों, मगर उनके सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य पर कोई चर्चा- परिचर्चा नहीं हुई है। अनूदित उपन्यासों की स्वीकृति मलयालम में प्रचुर मात्रा में हुई, मगर अनुवादकों के बारे में प्रकाशन- संस्थाओं ने अधिक महत्व नहीं दिया। अनुवादों की संख्या बढ़ाने में भाषा पोषिणी, मातृभूमि आदि पत्रिकाओं का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है। बंगाली से मलयालम में उपन्यासों के अनुवादों की संख्या काफी अधिक थी, मगर नाटकों एवं कविताओं के अनुवादों की संख्या काफी कम थी। केरल के राजनैतिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को ढ़ालने में बंगाली- मलयालम उपन्यासों के अनुवादों का महत्वपूर्ण स्थान है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1.डॉ. जया सुकुमारन्, बंगाली नोवलुकल मलयालत्तिल (बंगाली उपन्यास- मलयालम में), तारतम्य पठनसंघम्, चंगनाश्शेरी, 2011, पृ. सं. 119

2.डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर, विवर्तन विचारम्, केरल भाषा इंस्टीट्यूट्, तिरुवनंतपुरम्,2019, पृ. सं. 32

◆ असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
सर सएद कॉलेज, तालिपरम्ब, कन्नूर जिला, केरल राज्य।
फोन: 9400354822

सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण में 'हम न मरब'

◆ सुस्मिता पी पणिक्कर

सारांश : 'हम न मरब' प्रसिद्ध हिंदी लेखक ज्ञान चतुर्वेदी का एक चुर्चित व्यंग्य उपन्यास है , जो जीवन और मृत्यु के बीच के संबंधों को व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत करता है। उपन्यास की कहानी 'बब्बा' नामक पात्र की मृत्यु के बाद उसके परिवार और रिश्तेदारों के बीच उत्पन्न होनेवाली परिस्तिथियों और मानसिकताओं को उजागर करती है। इस रचना में लेखक ने 'मृत्यु' को केंद्र में रखकर, उससे संबंधित सामजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण का विश्लेषण किया है। उपन्यास जीवन के उतार–चढ़ाव को दर्शाते हुए, मृत्यु के अवसाद से जीवन के उत्सव की ओर अग्रसर होता है । पुस्तक के 'समर्पण' में लेखक ने लिखा है "मुझे विश्वास है कि मैं कभी नहीं मरूँगा; इस नई पीढ़ी में ,हमेशा ही जिंदा रहने वाला हूँ मैं।"[1]

'हम न मरब' में सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण

ज्ञान चतुर्वेदी जी का उपन्यास 'हम न मरब' समकालीन भारतीय समाज की उन जटिलताओं को उजागर करता है, जो जीवन और मृत्यु से जुड़ी सामाजिक मान्यताओं और सांस्कृतिक परंपराओं में गहरे तक समाई हुई हैं। यह उपन्यास मृत्यु के इर्द–गिर्द घूमते सामजिक और सांस्कृतिक व्यवहारों का न

केवल व्यंग्यात्मक विश्लेषण करता है, बल्कि यह दिखाने का प्रयास भी करता है कि हमारी परंपराएँ, रीति–रिवाज़ और मानसिकताएँ मृत्यु को भी एक नाटकीय घटना बना देती हैं। 'हम न मरब' मृत्यु से जुड़ी सामाजिक मान्यताओं, पारिवारिक संबंधों, आर्थिक पहलुओं और धार्मिक आस्थाओं का यथार्थवादी चित्रण करता है। भारतीय समाज में मृत्यु केवल एक व्यक्तिगत क्षति नहीं होती बल्कि यह एक सामाजिक घटना बन जाती है। उपन्यास में यह दिखाया गया है कि जब कोई व्यक्ति मरता है, तो उसके परिवार और आस–पास के लोग किस प्रकार प्रतिक्रिया देते हैं। यह प्रतिक्रिया अक्सर दुःख से अधिक औपचारिकताओं से भरी होती है। शोक के नाम पर की जाने वाली रस्में और अनुष्ठान केवल एक परंपरा बनकर रह जाते हैं।

"मंझली, मानो रोने वाली आटोमेटिक मशीन जैसी है। अच्छी भली, बैठी बतिया रही हैं। हंस बोल रही है। तब दूर से कोई नया रिश्तेदार आता दिखाई दे गया कि बस! मानो अन्दर कोई खटका टाईप चीज़ दब जाती है। वे अचानक ही पछाड़ें खाने लगती हैं। सभी चकित होते हैं कि वे ऐसा, आखिर करती किस तरह है?"[2]

यह उपन्यास यह भी दिखाता है कि मृत्यु के बाद समाज किस प्रकार मरने वाले व्यक्ति के जीवन का महिमा मंडन करता है,भले ही जीवनकाल में वह उपेक्षित रहा हो। यह सामाजिक विडम्बना इस बात को दरशाती है कि मृत्यु के बाद व्यक्ति की छवि को लेकर समाज में अधिक संवेदनशील दिखाई देता है, जबकि उसके जीते – जी ऐसा नहीं होता।

ज्ञान चतुर्वेदी मृत्यु के बहाने पारिवारिक संरचना की परतों को उधेड़ते हैं। जब किसी व्यक्ति की मृत्यु होती है, तो परिवार में उसके प्रभाव, संपत्ति और उत्तराधिकार को लेकर नए समीकरण बनते हैं। उपन्यास दिखाता है कि कैसे एक परिवार मृत्यु के नाम पर एकजुट होता है, लेकिन उमके भीतर स्वार्थ और व्यक्तिगत हित भी छिपे रहते हैं।

"शवयात्रा बेतवा के मरघट घाट पे पहुँचने ही वाली है। मान लो कि अगर चाभी गुम ही गई हो, तो? अगला कदम क्या हो? शवयात्रा भी तो स्साली सगे बाप की है भैया। किसी और की रही होती तो अभी छोड़ – छाड़ कर पीछे जाते और रास्ते में तलाश लेते।"[3]

भारतीय समाज में मृत्यु के बाद संपत्ति और उत्तराधिकार का सवाल हमेशा ही महत्वपूर्ण रहा है। उपन्यास इस पहलू को बहुत ही सूक्ष्मता से पकड़ता है और दिखाता है कि कैसे मृत्यु के बहाने लोग अपने-अपने लाभ की गणना करने लगते हैं।

'हम न मरब' इस तथ्य को उजागर करता है कि मृत्यु केवल भावनात्मक या अध्यात्मिक घटना नहीं होती , बल्कि इसका एक पहलू भी होता है। मृत्यु के बाद तेरहवीं , श्राद्ध , ब्राह्मण भोजन और अन्य रस्मों के नाम पर परिवार द्वारा परंपराएँ केवल दिखावे केलिए निभाई जाती हैं लेकिनइसके पीछे का वास्तविक उद्देश्य कहीं न कहीं सामाजिक प्रतिष्ठा बनाये रखना होता है। समाज में मृत्यु के साथ भी व्यवसाय जुदा हुआ है – चाहे वह श्मशान के पुजारी हो , तेरहवीं का आयोजन करने वाले लोग हो या फिर ब्राह्मण भजन कराने की व्यवस्था हो। धार्मिक दृष्टि से देखा जाये तो भारतीय समाज में मृत्यु के बाद स्वर्ग , पुनर्जन्म और मोक्ष जैसी अवधारणाएँ गहराई से समायी हुई हैं। उपन्यास यह दिखाता है कि लोग किस प्रकार इन मान्यताओं का उपयोग अपने हितों के लिए करते हैं। मृत्यु के बाद किये जाने वाले धार्मिक अनुष्ठानों का असली उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति नहीं, बल्कि सामाजिक स्वीकृति होती है। ज्ञान चतुर्वेदी जी यह दर्शाते हैं कि कैसे धार्मिक अनुष्ठान और कर्मकांड मृत्यु के इर्द गिर्द औपचारिक बन गए हैं , जिनका वास्तविक आध्यात्मिकता से कम और सम्माजिक दिखावे से अधिक सम्बन्ध होता है।

भारतीय संस्कृति में मृत्यु को एक महत्वपूर्ण चरण माना गया है और इसे कई परंपराओं और मान्यताओं से जोड़ा गया है। उपन्यास 'हम न मरब' इन सांस्कृतिक परंपराओं की पड़ताल करता है और यह दिखता है कि कैसे ये परंपराएँ समय के साथ अपने मूल अर्थ को खोती जा रही हैं।"हमारी संस्कृति में भी जो कहा गया है कि बूढ़े का आदर लाजमी है ....सो हम सब करते ही हैं ...वरना असलियत सबको पता है ... सही बात ..... और करें भी क्या?"[4]

मृत्यु के बाद कई परंपराएँ निभाई जाती हैं जैसे कि शव दाह , अस्थि विसर्जन, तेरहवीं, पिंडदान आदि। इन परंपरों को निभाने में लोग अधिक ध्यान देते हैं , लेकिन वे उस व्यक्ति के जीवन और उसकी ईच्छाओं को अनदेखा कर देते हैं। इसके आलावा मृत्यु के बाद घर की महिलाओं का सतीत्व , सफ़ेद वस्त्र धारण करना ,

सामाजिक बहिष्कार जैसी परंपराएँ भी कहीं न कहीं पितृसत्तात्मक सोच को दरशाती हैं । इन मुद्दों को व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है कि किस प्रकार मृत्यु के बाद भी जातिगत भेदभाव बना रहता है । भारतीय समाज में श्मशान भी जाति के आधार पर विभाजित होते हैं और मृत्यु के अनुष्ठानों में जाति आधारित विभाजन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है । ज्ञान चतुर्वेदी यह प्रशन उठाते हैं कि यदि मृत्यु के बाद सबकुछ समाप्त हो जाता है, तो फिर जाति जैसी व्यवस्थाएँ मृत्यु के बाद भी क्यों बनी रहती हैं ? यह एक गहरा सामाजिक प्रश्न है, जिस पर उपन्यास पाठकों को सोचने के लिए मज़बूर करता है । भारतीय संस्कृति में मृत्यु से जुड़े कई मिथक और मान्यताएँ हैं, जैसे कि आत्मा अमर होती है, मृत्यु के बाद आत्मा को शान्ति के लिए कर्मकांड आवश्यक होते हैं आदि। उपन्यास में यह दरशाया गया है कि ये मिथक कैसे समाज में गहराई से जड़ जमा चुके हैं और लोग इन्हें बिना प्रश्न किये मानते चले जाते हैं ।

"एसी शांतिपूर्ण मौत किसे मिलती है भला ? पुण्यात्मा थे ।.....मरते टाइम न तो खुद कोई कष्ट भोगा, न ही किसी को कोई कष्ट दिया ।....सोए,और बस सोते ही रह गए ।...वाह .... धन्य है परमात्मा कि तेरी माया अपरंपार । जो तो ईश्वर की ही कृपा रही वरना तो बुढ़ापे में जो न बिगड़ जाये सोई थोड़ा है।"[5]

इन मान्यताओं का उपयोग कुछ लोग अपने स्वार्थ के लिए करते हैं । कई बार मृत्यु के अनुष्ठानो के नाम पर समाज में आर्थिक और मानसिक शोषण भी होते हैं ।

निष्कर्ष : 'हम न मरब' केवल एक व्यंग्य उपन्यास नहीं है, बल्कि यह भारतीय समाज की उन जटिलताओं को उजागर करने वाला दर्पण है, जो मृत्यु जैसी गंभीर घटना के इर्द गिर्द बुनी गयी है।इस उपन्यास में ज्ञान चतुर्वेदी ने समाज की उन विडंबनाओ को बड़े ही रोचक और तीखे व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है, जिन पर सामान्यतः हम चर्चा करने से बचते हैं। यह उपन्यास न केवल मृत्यु से जुड़े सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं पर सवाल उठाता है , बल्कि यह भी दरशाता है कि कैसे समाज और परिवार के भीतर मृत्यु के बहाने नए समीकरण बनते हैं। 'हम न मरब' हमें यह सोचने पर मज़बूर करता है कि क्या मृत्यु केवल एक शारीरिक समाप्ति है, या फिर यह समाज के लिए एक नई नाटकीय घटना बन जाती है ? उपन्यास इन सभी प्रश्नों का उत्तर व्यंग्यात्मक और गहरे सन्देश के रूप में प्रस्तुत करता है।

संदर्भ

1. 'हम न मरब'– ज्ञान चतुर्वेदी –राजकमल पपेरबैक्स – 2014
2. वही - पृ.सं- 125,126
3. वही -पृ .सं –82
4. वही – पृ . सं –137
5. वही – पृ .सं – 134

सहायक ग्रन्थ

'हिन्दी व्यंग्य का इतिहास'– सुभाष चंदर –भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2017

◆ शोधार्थी

हिंदी विभाग , यूनिवर्सिटी कॉलेज,

तिरुवनंतपुरम, केरल।

9567486288, 6235450278

ई.मेल -Susmithappanicker96@gmail.com

उत्तराखण्ड का जाड़-भोटिया समुदाय: एक सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन

◆ **उदय प्रकाश**

सारांश: विश्व के विभिन्न भागों में रहने वाला जनजातीय समाज जैसे-जैसे वैश्वीकरण के इस दौर में विकास की मुख्य धारा से जुड़ रहा है वैसे-वैसे धीरे-धीरे वह अपनी पारम्परिक जीवन पद्धति, रीति-रिवाज़ों एवं लोक संस्कृति से दूर होता जा रहा है। कुछ जनसमुदाय ऐसे भी हैं जो विकास की मुख्यधारा से जुड़ने के बावजूद भी अपनी लोकसंस्कृति को जीवित रखे हुए हैं। उत्तराखण्ड के उत्तर हिमालयी क्षेत्र में भारत-तिब्बत सीमा पर निवास करने वाली भोटिया जनजाति उन्हीं जनजातियों में से एक है। भोटिया जनजाति की ही एक शाखा जाड़ उत्तरकाशी के नेलांग-जादोंग क्षेत्र में रहती है। विकास की मुख्य धारा से जुड़ने के बावजूद

भी वह अपनी पारम्परिक लोक संस्कृति को संजोया हुआ है। जाड़-भोटिया समुदाय में बौद्ध-हिन्दू धर्मो-संस्कृतियों का मिला-जुला स्वरूप देखने को मिलता है, जो उसकी विशिष्ट पहचान है।

बीज शब्द- नेलांग, जादोंग, बगोरी, जाड़, थोलिंग, च्छोंग्सा।

प्रस्तावना

उत्तर हिमालयी क्षेत्र में भारत-तिब्बत सीमा पर निवास करने वाली मंगेली, तिब्बती एवं बर्मी मिश्रित भाषा बोलने वाली विभिन्न जनजातियों में से उत्तराखण्ड के उत्तरकाशी जनपद के उत्तरी सीमान्त क्षेत्र में निवास करने वाली जाड़-भोटिया जनजाति की अपनी अलग पहचान है। यह जनजाति भारत-तिब्बत सीमा के निकट उच्च हिमालयी क्षेत्र में निवास करती है।1 वैश्वीकरण के इस दौर में जहाँ हिमालयी क्षेत्र में निवास करने वाले विभिन्न समुदायों में पारम्परिक संस्कृति विलुप्त हो रही है वहीं उत्तरकाशी जनपद की एकमात्र जनजाति जाड़-भोटिया यहाँ की विषम भौगोलिक परिस्थितियों में भी अपनी सामाजिक व्यवस्था एवं संस्कृति को संजोई हुए है।

शोध प्रविधि:

प्रस्तुत अध्ययन के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक आंकड़े उत्तरदाताओं से बात करके एकत्र किये गये हैं, जबकि द्वितीयक आंकड़े पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, प्रकाशित एवं अप्रकाशित शोध ग्रंथों से संकलित किये गये हैं।

अध्ययन का उद्देश्य:

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य उत्तराखण्ड की जाड़-भोटिया जनजाति के सामाजिक सांस्कृतिक पहलुओं का अध्ययन करना है।

जाड़-भोटिया:

'भोटिया' शब्द की उत्पति 'भोट'से हुई है। उत्तराखण्ड के तिब्बत (चीन) तथा नेपाल सीमा से जुड़े क्षेत्र को भोट क्षेत्र कहा जाता है।[2] वह भूभाग जिसमें यह जनजाति निवास करती है, कभी तिब्बत की राजसत्ता भोट के अधीन थी। इसी कारण इस भूभाग को भोट कह दिया गया और इसमें निवास करने वाली जाति को 'भोटिया'कहा गया।[3] भोटिया जनजाति शौका, जोहारी, तोलछा, मारछा एवं जाड़ वर्गों में उप-विभाजित है। भोट शब्द का प्रयोग जिस भू-भाग के लिए किया गया, वह जनपद पिथौरागढ़ के जौहार एवं दारमा परगना के तिब्बत की सीमा तक फैला भाग तथा गढ़वाल के उत्तरकाशी जनपद में जेलू-खागा दर्रे के पास जाड़ गंगा व भागीरथी की घाटी और चमोली जिले के माणा दर्रे के नीचे स्थित है, का भूभाग है।[4]

उत्तरकाशी में निवास करने वाली भोटिया जनजाति को स्थानीय लोग 'जाड़'कहकर सम्बोधित करते हैं। 'जाड़ गंगा'के उद्गम स्थल के निकट स्थित नेलांग एवं जादोंग में निवास करने के कारण इन्हें 'जाड़'नाम से सम्बोधित किया जाता है।

शिवप्रसाद डबराल नेलंग के जाड़ को भिल्ल-किरात जाति का अवशेष मानते हैं।[5] डबराल के अनुसार 'ये लोग प्राचीन किरात जाति के अवशेष हैं जिनमें तिब्बती रक्त का मिश्रण है।'[6] वास्तव में मंगोल मुख-मुद्रा वाली भिल्ल-किरात जाति लगभग तीन हज़ार वर्षों से हिमालय प्रदेश में जीवन-यापन कर रही है।[7] एटकिन्सन, शेरिंग तथा राहुल सांकृत्यायन तीनों विद्वान नेलांग के जाड़ों को किरातों का वंशज मानते हैं। भागीरथी का नाम 'किराती' होना भी इस मत की पुष्टि करता है।[8] किरात जाति घुमन्तू थी।

तिब्बती समाज एवं व्यापारी वर्ग नेलांग तथा जादोंग में बसे लोगों तथा लंका तक की सीमा को च्छोंग्सा कहता है। वैसे नेलांग ग्राम भी 'च्छोंग्सा' के नाम से लोकप्रिय रहा है। आज भी इस क्षेत्र के मूल निवासियों की पहचान इसी नाम से होती है। यहाँ 'च्छोंग्सा' से अभिप्राय व्यापारी से है। पश्चिमी तिब्बत का भारत के साथ सर्वाधिक व्यापार इसी मार्ग से होता था। अतः तिब्बत का भारत से सर्वाधिक व्यापार होने के कारण यह क्षेत्र 'च्छोंग्सा' कहलाया।[9] च्छोंग्सा चारों ओर से बर्फीले पहाड़ों से घिरा है और समुद्र तल से 11,310

फुट उँचा है।

जाड़-भोटिया समुदाय का मूल गांव नेलांग-जादोंग है, जो भारत-तिब्बत सीमा पर स्थित है। पूर्व में ये लोग ग्रीष्म ऋतु में नेलांग-जादोंग में निवास करते थे एवं शीत काल में इस क्षेत्र में अत्यधिक ठंड होने के कारण अपने भेड़-बकरियों के साथ निचली घाटियों में आ जाते थे। वर्ष 1962 में शीतकाल में चीन ने अचानक भारत पर हमला कर दिया था। 1962 में नेलांग गांव में करीब 36 और जादोंग गांव में 16 परिवार रहते थे। उस समय नेलांग और जादोंग गांव के ग्रामीण भेड़-बकरियों के साथ निचले इलाकों में आए थे। युद्ध की स्थिति को देखते हुए तत्कालीन सरकार ने भारत-चीन (तिब्बत) सीमा पर सेना की टुकड़ी भेजी। नेलांग- जादोंग गांव के जाड़ समुदाय के लोगों को हर्षिल के समीप बगोरी और डुण्डा में विस्थापित कर दिया गया। वर्तमान में हर्षिल, बगोरी एवं डुण्डा इस समुदाय के निवास स्थान हैं। बगोरी-हर्षिल तथा डुण्डा उनके क्रमशः ग्रीष्मकालीन और शीतकालीन आवास हैं।

धर्म, समाज एवं संस्कृति:

जाड़-भोटिया जनजाति धार्मिक दृष्टि से बौद्ध तथा हिन्दू धर्मानुयायी है। यह उत्तराखण्ड की प्रमुख पहाड़ी जनजातियों में से एक है। उनकी अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक विशेषताएँ हैं। व्यापार एवं आर्थिक सम्बन्धों के कारण वे तिब्बतियों के अधिक सम्पर्क में आने के कारण उनकी संस्कृति एवं धार्मिक मान्यताओं से अधिक प्रभावित हो गये। तिब्बत से व्यापार समाप्त होने के उपरान्त वे पुनः तीव्र गति से हिन्दू धर्म एवं भारतीय संस्कृति की ओर उन्मुख हो रहे हैं।[10]

जाड़ वर्ग के अधिकांश देवी-देवता प्रकृति की महान शक्तियाँ हैं। जाड़ जनजाति बौद्ध एवं हिन्दू दोनों मतों के प्रति समान भाव से आस्थावान है। जाड़ परिवारों में हिन्दू एवं बौद्ध धर्म के मतानुकूल पुरोहित एवं लामा से धार्मिक क्रियाएँ सम्पादित होती हैं। रिंगाली देवी तथा डुण्डा देवी सारे गांव की सार्वजनिक देवियाँ हैं। ग्राम देवताओं में मी-पारम (लाल देवता) प्रमुख हैं। शरद ऋतु में जब सभी परिवार गुनसा (शीतकालीन निवास) की ओर प्रयाण करते हैं, उस समय यह गांव की रक्षा करता है। मी-पारम के मन्दिर नेलांग, जादोंग तथा हर्षिल-बगोरी में मिलते हैं। जेठ तथा आषाढ़ में देवता की पूजा सामूहिक रूप से होती है। जाड़ समूह में पांच पांडवों तथा द्रौपदी के प्रति विशेष आस्था एवं अनुराग विद्यमान है। हर्षिल में प्रतिवर्ष पांडव नृत्य होता है। प्रायः सेब तथा राजमा पकने के समय पाण्डव-नृत्य का आयोजन होता है। यह आयोजन दशहरे के अन्तिम तीन दिन पूर्व प्रारम्भ होता है। पाण्डवों का मन्दिर गांव के बीच में है।[11]

जाड़ समुदाय के ग्रामीण भारत-तिब्बत सीमा पर स्थित अपने मूल गांव जादोंग में ग्राम देवता लाल देवता की विधिवत् पूजा-अर्चना करते हैं। यहाँ पर रिंगाली देवी की देव डोली के साथ पांडव नृत्य और रांसो तांदी का आयोजन किया जाता है। ग्रामीण जून माह में अपने ग्राम देवता लाल देवता की पूजा के लिए जाते हैं।

डुण्डा क्षेत्र के वीरपुर में टिहरी रियासत से गुनसा (शीतकालीन निवास) के लिए स्थान मिलने के उपरान्त जाड़ लोग बसने लगे। आरम्भ में उन्हें वीरपुर में फावड़ा, त्रिशूल, चिमटे आदि मिले। कहा जाता है कि यहाँ भगवती के वीर रहते थे। इसी आधार पर इस क्षेत्र को 'वीरपुर'कहा जाता है।[12]

जाड़ समाज पर पश्चिमी तिब्बती जीवन का व्यापक प्रभाव पड़ा था। पशुपालन के साथ-साथ व्यापार पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित रहने के कारण भोटिया जनजाति पर पश्चिमी तिब्बत में प्रचलित बोन तथा लामा धर्म का प्रभाव पड़ा। उनकी तंत्र-मंत्र की शक्ति, चमत्कार तथा विवेकशून्य कर देने वाली अद्भुत कायिक साधना के कारण वे लामावाद के प्रभाव में आते चले गये। विगत युग में इस समाज में दैनिक जीवन की प्रत्येक समस्याओं का समाधान लामा के द्वारा ही होता था। फलतः जीवन के प्रत्येक पथ पर इसका प्रभाव पड़ना समीचीन है। यद्यपि इनकी सनातन धर्म में पूरी आस्था है।[13]

जाड़-भोटिया समाज बौद्ध और हिन्दू दोनों परम्पराओं और रीति-रिवाज़ों को मानते हैं। हर्षिल-

बगोरी एवं डुण्डा गांव में बौद्ध मन्दिर में भिक्षुओं द्वारा तिब्बती शास्त्रों का पाठ एवं प्रार्थनाएँ की जाती हैं। गांव के लोग प्रातः पूजा करने मन्दिर जाते हैं और मन्दिर और बौद्ध स्तूप की परिक्रमा करते हैं। इस प्रकार इस समुदाय में बौद्ध एवं हिन्दू धर्म की मिली जुली संस्कृति आज भी विद्यमान है।

जिले के जनजातीय गाँवों में महिला लिंगानुपात कम है। इसी कारण यहाँ के जाड़ समुदाय में लड़कों के विवाह सम्बन्ध प्रायः अपर किन्नौर के विभिन्न गांवों से होते थे और आज भी मिलते हैं। वहाँ महिलाओं की संख्या पुरुषों से अधिक है।[14] घर जवांई रखने की परम्परा भी जाड़ समुदायों में मिलती है। प्रायः घर जवांई स्थानीय न होकर ये किन्नौर क्षेत्र के गांवों से अधिक हैं।

दाह-संस्कार: भोटिया समाज में किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर उसके नाम से गोम्पा मे 108 दीए जलाए जाते हैं। अन्तिम संस्कार का समय-निर्धारण एवं रस्म लामा द्वारा की जाती है।

बोली-भाषा: जाड़ भोटिया समुदाय द्वारा बोली जाने वाली भाषा को 'भोटिया' भाषा के नाम से जाना जाता है। यहाँ 'भोटिया' भाषा का अर्थ भोट देश (तिब्बत) के लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा से है। इस भाषा में कुछ शब्द तिब्बती भाषा के समान हैं। इसका कारण भोटियाओं का सदियों से तिब्बत से व्यापार होने के कारण उनके सम्पर्क में होने के कारण है। व्यापार को सुगम बनाने की दृष्टि से भोटियाओं ने तिब्बती भाषा भी सीखी जिससे उनकी अपनी बोली में भी कुछ शब्द तिब्बती के आ गये।

वेश-भूषा- तिब्बत के समीपवर्ती क्षेत्र के निवासी होने तथा दीर्घकाल तक तिब्बत से व्यापारिक सम्बन्ध रहने के कारण इन भोटिया लोगों की बोली में तिब्बती शब्दों का समावेश होना तथा इनकी वेशभूषा और खानपान में कुछ साम्य होना स्वाभाविक है।[15]

ग्रीष्मकालीन एवं शीतकालीन निवास: जाड़-भोटियाओं के सामान्यतः दो निवास स्थल होते हैं-एक शीतकालीन तथा दूसरा ग्रीष्मकालीन। दोनों निवास स्थलों में निवास की अवधि लगभग छह-छह माह होती है। शीतकालीन निवास गर्म घाटियों में तथा ग्रीष्मकालीन तिब्बती सीमा के निकट उच्च हिमालयी क्षेत्र में होते हैं। जाड़ समुदाय ग्रीष्मकाल के प्रारम्भ होने पर अपने शीतकालीन निवास से अपनी भेड़-बकरियों के साथ उच्च हिमालयी क्षेत्र की ओर प्रस्थान करता है। वर्तमान में जाड़-भोटियाओं का शीतकालीन निवास डुण्डा एवं ग्रीष्मकालीन निवास हर्षिल-बगोरी है। तिब्बत व्यापार की समाप्ति पर अब अधिकांश भोटिया परिवार स्थायी हो चुके हैं।

उत्सव एवं त्यौहार:

लोसर- उत्तरकाशी के डुण्डा गांव में निवास करने वाली जाड़ भोटिया जनजाति की लोक मान्यताओं एवं परम्पराओं में तिब्बती प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। बौद्ध धर्म की परम्पराओं से जुड़ा समाज होने के कारण इनके द्वारा मनाया जाने वाला त्यौहार 'लोसर' (लो-नया, सर-साल) नववर्ष के आगमन के रूप में डुण्डा में रहने वाले जाड़, किन्नौरी व खाम्पाओं (तिब्बतियों) द्वारा फरवरी के प्रथम सप्ताह में आयोजित किया जाता है। लोसर त्यौहार को तीन दिन तक मनाया जाता है। अन्तिम दिवस लुगता (झण्डा) फहराया जाता है।[16] लोसर पर्व पर घरों में पुराने झण्डे उतारकर नये झण्डे फहराये जाते हैं। लोसर को स्थानीय भाषा में 'लोतड़'भी कहा जाता है।

व्यापार, कृषि एवं पशुपालन:

भोटियाओं के व्यापार को दो भागों में बांटा जा सकता है- 1.ग्रीष्मकालीन 2.शरदकालीन। उनके ग्रीष्मकालीन व्यापार में विभिन्न प्रकार के रंग, बटन, चाकू, नील, क्राकरी, तम्बाकू, मसाले, गुड़, चीनी, चाय, स्टेशनरी, गेहूं, चावल, जौ, महुआ आदि होते थे, जिन्हें वे तिब्बत ले जाते थे। इस सामान के विनिमय में तिब्बती व्यापारियों से अनेक तिब्बती सामान खरीदते थे, जिन्हें वे शरद काल में भारतीय बाज़ारों में बेचते थे। इसमें ऊन, फर, भेड़, बकरी, घोड़े, खच्चर, खाल, चमड़ा, स्वर्ण भस्म, नमक इत्यादि होते थे। अनेक शताब्दियों तक भोटियाओं का भारत-तिब्बत व्यापार पर एकाधिकार था। भोटियाओं में

ग्रीष्म एवं शरद्कालीन व्यापार एक-दूसरे के पूरक थे और उनकी आर्थिक संरचना के अभिन्न अंग थे।[17]

वर्ष 1962 से पूर्व भोटिओं का तिब्बत के साथ व्यापारिक सम्बन्ध सदियों से चला आ रहा था। विषम भौगोलिक परिस्थितियों के होने से जनजाति घूमन्तू एवं व्यापारिक गतिविधियों से जुड़कर अपनी आजीविका चलाती रही है। हिमालय के मध्य विभिन्न दर्रों (गिरिद्वारों) के समीप बसे होने के कारण तिब्बत काफी निकट पड़ता था। ये अपनी भेड़, बकरियों, घोड़ों को लेकर ग्रीष्मकाल में ऊंचे बुग्यालों (चरागाहों) में चले जाते थे और शीतकाल आरम्भ होते ही निचली गर्म घाटियों में स्थित अपने गांवों में वापस आ जाते थे। भारत-चीन आक्रमण से पूर्व भोटान्तिक ग्रीष्मकाल के आरम्भ में बर्फ के पिघल जाने के बाद इन गिरिद्वारों से होकर अपनी भेड़ों-बकरियों व खच्चरों में भारत से चीनी, चाय, तम्बाकू, सूती तागा व अन्य आवश्यक वस्तुओं को तिब्बत व्यापार के लिए ले जाते थे। वस्तुओं व सामानों के बदले वहाँ से सुहागा, हींग, फरण (फाण), चैरु, लादा, चंवर व अन्य वस्तुओं को लाते थे।[18] धरासू में रामसिंह तथा टिहरी में चन्द्रसिंह की स्थायी दुकानें थीं, जिनमें तिब्बत से आयातित वस्तुएँ सदैव सुलभता से प्राप्त हो जाती थीं।[19]

तिब्बत के छपरंग मठ व थोलिंग मठ में स्थित व्यापारिक मण्डियों में आने पर एक सफेद वस्त्र का थान, चन्दन व रुपया भोटिया व्यापारियों को देना होता था। छपरंग व थोलिंग मठ मुख्य मण्डियाँ थीं।20 नेलांग-जादोंग मार्ग द्वारा पश्चिमी तिब्बत के प्रसिद्ध बौद्ध मठ थोलिंग पहुँचा जा सकता है। वास्तव में पश्चिमी तिब्बत का भारत के साथ सर्वाधिक व्यापार इसी मार्ग से होता था। 11वीं शती में थोलिंग मठ की स्थापना के बाद इस मार्ग से आवागमन और अधिक बढ़ गया।[21]

व्यापार प्रायः जून के महीने से आरम्भ होता था। तिब्बत में व्यापार हेतु प्रस्थान से पूर्व पूजोपचार किए जाते थे। व्यापारियों को ग्रामवासी 'सुम्दू'के निकट तक छोड़ आते थे। इस व्यापार-यात्रा में सबसे आगे 'फोन्या'(मान्य भोटांतिक) चलता था। उसके पीछे एक बड़ा बकरा जिसके गले में घंटी बंधी होती थी। उसके पीछे भेड़-बकरे, गधे और घोड़े तथा फिर भोटांतिक और कुत्ते चलते थे। इसी क्रम में भोटांतिकों की टोलियाँ चलती थीं।[22]

भोटिया जनजाति का मुख्य आधार पशुपालन (भेड़-बकरीपालन) व ऊन उद्योग रहा है। भेड़-बकरियों को ऊन प्राप्त करने के साथ-साथ भारवाहक के रूप में भी उपयोग किया करते थे।[23] इनकी भेड़ बकरियाँ ही पहाड़ की माल-गाड़ियाँ थीं।[24]

आज अस्सी प्रतिशत भोटिया व्यक्ति ऊनी कारोबार से जुड़े हुए हैं, जिसमें कुछ परिवारों के पास अपनी ही भेड़ों की ऊन होने से कताई-बुनाई की जा रही है। दूसरे वे हैं जो अन्य परिवार से ऊन खरीदकर ऊनी कारोबार में संलग्न हैं। आज ऊन उद्योग को बढ़ावा देने के लिए उत्तराखण्ड सरकार ने इस क्षेत्र के हर्षिल, भटवाड़ी, उत्तरकाशी आदि स्थानों में 'प्रशिक्षण केन्द्र' खोले हैं, जहाँ पर नवीनतम तकनीक से ऊन उद्योग को संचालित करने की जानकारियां दी जाती हैं।[25]

आलू, राजमा, सेब आदि की खेती करके ये अपना जीवन-यापन करते हैं। डुण्डा तथा अन्य क्षेत्रों में इनका मुख्य व्यवसाय ऊन का है। प्रारम्भ में ये लोग पशुचारण तथा व्यापार पर निर्भर थे, परन्तु वर्तमान में स्थायी खेती होने लगी है। कुछ लोग पशुपालन करते हैं। ये ऊन के वस्त्रों का भी व्यापार करते हैं। शीतकाल में डुण्डा में स्थान-स्थान पर भेड़ तथा बकरी के बालों से निर्मित वस्त्र सजे हुए दिखाई देते हैं।[26]

जड़ी-बूटी व्यवसाय:

हिमालयी क्षेत्र में उगने वाले समस्त पादपों (वनस्पतियों) में औषधीय गुण पाये जाते हैं। जाड़-भोटिया समुदाय उच्च हिमालयी क्षेत्रों से लाकर इसका व्यवसाय करते हैं। एक तरह से इन औषधीय जड़ी-बूटियों के लिए व्यवसायी व अन्य आम लोग जाड़-भोटिया समुदाय पर ही निर्भर रहते हैं। इन जड़ी-

बूटियों में जटामासी, अतीश, लादू, चोरा, कुटकी, शिलाजीत, हींग, हरड़, बहेड़ा, धतूरा, तेजपात आदि प्रमुख हैं।

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उच्च हिमालयी क्षेत्र की भारत-तिब्बत सीमा पर निवास करने वाली जाड़-भोटिया जनजाति जहाँ एक ओर वैश्वीकरण के इस दौर में विकास की ओर अग्रसर है वहीं अपनी संस्कृति एवं परम्परा को भी संजोई हुई है। सरकार की वाइब्रेट विलेज योजना के तहत जादुंग गांव को फिर से बसाने की योजना है, जिसके तहत खंडहर हो चुके घरों का जीर्णोद्धार किया जाएगा। इससे जहाँ एक ओर इस सीमान्त क्षेत्र में पर्यटन को बढ़ावा मिलेगा, वहीं आम लोग इस क्षेत्र विशेष की संस्कृति से भी परिचित होंगे।

सन्दर्भ

1. उत्तरांचल की भोटिया जनजाति, सुभाष चन्द्र शर्मा, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2002, पृ. 29
2. उत्तराखण्ड हिमालय समाज एवं संस्कृति, दीपक डोभाल, हर्षिता प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृ.10
3. उत्तरांचल की भोटिया जनजाति, सुभाष चन्द्र शर्मा, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2002, पृ. 16
4. उत्तरांचल की भोटिया जनजाति, सुभाष चन्द्र शर्मा, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2002, पृ. 17
5. उत्तराखण्ड के भोटांतिक, शिवप्रसाद डबराल, वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा गढ़वाल, 1995, पृ. 20
6. उत्तराखण्ड के भोटांतिक, शिवप्रसाद डबराल, वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा गढ़वाल, 1995, पृ. 56-57
7. राहुल वांगमय, प्रागैतिहासिक युग में किन्नर, खण्ड-7, जिल्द-3, कमला सांकृत्यायन (संपा.), राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1994, पृ. 55
8. उत्तराखण्ड के भोटांतिक, शिवप्रसाद डबराल, वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा गढ़वाल, 1995, पृ. 23
9. मध्य हिमालय की जाड़ जनजाति का सांस्कृतिक संघर्ष, सुरेश ममगांई, साहित्य सहकार प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ. 20
10. उत्तरांचल की भोटिया जनजाति, सुभाष चन्द्र शर्मा, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2002 पृ. 31, 32
11. मध्य हिमालय की जाड़ जनजाति का सांस्कृतिक संघर्ष, सुरेश ममगांई, साहित्य सहकार प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ. 93
12. मध्य हिमालय की जाड़ जनजाति का सांस्कृतिक संघर्ष, सुरेश ममगांई, साहित्य सहकार प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ. 97
13. मध्य हिमालय की जाड़ जनजाति का सांस्कृतिक संघर्ष, सुरेश ममगांई, साहित्य सहकार प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ. 106
14. मध्य हिमालय की जाड़ जनजाति का सांस्कृतिक संघर्ष, सुरेश ममगांई, साहित्य सहकार प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ. 22
15. उत्तरांचल की भोटिया जनजाति, सुभाष चन्द्र शर्मा, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2002, पृ. 30
16. उत्तराखण्ड हिमालय समाज एवं संस्कृति, दीपक डोभाल, हर्षिता प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृ. 28
17. उत्तरांचल की भोटिया जनजाति, सुभाष चन्द्र शर्मा, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2002, पृ. 30, 31
18. उत्तराखण्ड हिमालय समाज एवं संस्कृति, दीपक डोभाल, हर्षिता प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृ.29
19. उत्तराखण्ड के भोटांतिक, शिवप्रसाद डबराल, वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा गढ़वाल, 1995, पृ. 120
20. उत्तराखण्ड के भोटांतिक, शिवप्रसाद डबराल, वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा गढ़वाल, 1995, पृ. 43
21. मध्य हिमालय की जाड़ जनजाति का सांस्कृतिक संघर्ष, सुरेश ममगांई, साहित्य सहकार प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ. 20
22. मध्य हिमालय की जाड़ जनजाति का सांस्कृतिक संघर्ष, सुरेश ममगांई, साहित्य सहकार प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ. 73

23. उत्तराखण्ड हिमालय समाज एवं संस्कृति, दीपक डोभाल, हर्षिता प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृ. 31
24. मध्य हिमालय की जाड़ जनजाति का सांस्कृतिक संघर्ष, सुरेश ममगांई, साहित्य सहकार प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ. 74
25. उत्तराखण्ड हिमालय समाज एवं संस्कृति, दीपक डोभाल, हर्षिता प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृ.33
26. मध्य हिमालय की जाड़ जनजाति का सांस्कृतिक संघर्ष, सुरेश ममगांई, साहित्य सहकार प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ. 23

◆शोधार्थी, इतिहास विभाग
उत्तराखण्ड मु.वि.वि. हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)।
पता- जिला चिकित्सालय परिसर,
उत्तरकाशी-249193 (उत्तराखण्ड)।
ई.मेल- upd1304@gmail.com
मो.नं.-7055568260

वसीयत -प्रकृति और वृद्ध जीवन का प्रतीकात्मक मिलन

◆ **प्रीतिका एन**.

मनुष्य और प्रकृति का संबंध अत्यंत गहरा है। एक ऐसा अजीबो गरीब संबंध जो मनुष्य और प्रकृति को कभी सकारात्मक तो कभी नकारात्मक रूप से प्रभावित कर एक को दूसरे से जोड़ता है। लेकिन इस गहनतम रिश्ते में कई दरारें स्पष्ट हैं। कहीं-न-कहीं प्रकृति पर मनुष्य का अनियंत्रित हस्तक्षेप ही इन दरारों का मुख्य कारण है। प्रकृति को पूजते-पूजते आज इंसान प्रकृति के शोषण पर उतर आया है। प्रकृति असीम दया और परोपकार की जीवंत मूरत है। इसलिए गौतम बुद्ध कहते हैं; "वन असीम दया और परोपकार की ऐसी विशेष देन है,जो अपने निर्वाह के लिए कुछ माँग नहीं करता और अपने जीवन के उत्पादों को उदारतापूर्वक देता रहता है।"[1] अपने इसी विशेषता के कारण प्रकृति ने हमेशा इंसान को सब कुछ दिया है। लेकिन इंसान आभार व्यक्त करने की जगह अपने स्वार्थ के लिए पर्यावरण का शोषण करता है। अक्सर यह कहा जाता है कि प्रकृति माँ है और इंसान उसके संतान। लेकिन आज प्रकृति माँ, अपने ही बच्चों की दमनकारी प्रवर्त्तियों के कारण अवाक् है। परंतु आधुनिक समाज इतना अपने आप में व्यस्त होता जा रहा है कि उन्हें किसी की आवश्यकता नहीं है। अपने माँ-बाप के लिए जिनके पास वक़्त नहीं, वे प्रकृति के लिए क्यों चिंतित होने लगें। इसी आत्मकेंद्रीकरण ने मानव को सबसे दूर कर दिया है। जिस तरह आज पारिवारिक रिश्तों में आत्मीयता शेष नहीं रही है, उसी भांति हरेक रिश्तों की आत्मीयता नष्ट होती जा रही है। रिश्ते रेत की तरह फिसलते जा रहे हैं। कई संबंध पीछे छुड़ते जा रहे हैं। ऐसा ही संबंध है, संतान का माता- पिता से और प्रकृति का मनुष्य से। इन्हीं छुड़ते-टूटते संबंधों से पिरोया गया उपन्यास है, सूरज सिंह नेगी कृत 'वसीयत'। अपने आप में बेहद भिन्न यह उपन्यास वृद्ध जीवन संबंधी नवीन विचारधारा को साझा करने की सुंदर कोशिश है; "समाज में वृद्ध हाशिए पर जीने रहने पर अभिशप्त है। बेटा बड़ा होकर इतना विस्तार पर जाता है कि वह मूल घर में ही नहीं समा पाता है या घर के मुखिया को ही मूल से बेदखल कर देता है। इस दौर की मुख्य समस्या आने वाले समय में बड़ी विकृत हो जाने वाली है-बेटे की बाप से बढ़ती दूरी, घटती भावना और रिश्तों में जमती बर्फ। इस बर्फ को कैसे पिघलाया जाये?इसी सवाल या समस्या या घाव की चीर-फाड़ करने का काम डॉ. सूरज सिंह नेगी ने अपने तीसरे उपन्यास 'वसीयत'(2018) में किया है।"[2]

प्रशासन अफसर होकर भी सूरज सिंह नेगी का हृदय एक साहित्यकार का ही रहा है। अपने आसपास के यथार्थ से भलीभाँति अवगत नेगी जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से नवीन विचारों के साथ-साथ पुराने विचारों को भी नया रूप व रंग देने का सफल प्रयास किया है। प्रस्तुत उपन्यास, अब तक

हिन्दी साहित्य में लिखे गए वृद्ध जीवन संबंधी उपन्यासों से बिल्कुल पृथक वृद्ध व प्रकृति का सृजनात्मक मिलन सा प्रतीत होता है। इस मिलन को स्पष्ट रूप से समझने केलिए उपन्यास की कथावस्तु को दो प्रकार से परखना होगा। एक उपन्यास की सामान्य कथावस्तु जिसमें पिता का इंतज़ार व बेटे का न लौटना आदि है। दूसरा दृष्टिकोण प्रकृति व वृद्ध जीवन के मिलन से बना है जिससे विषय अधिक स्पष्ट होता है। रानीखेत के वादियों में कई दर्द एवं सवाल हैं, उससे अधिक किसी का इंतज़ार है। एक ऐसे पिता का इंतज़ार जो अपने पुत्र-वियोग में पल-पल तड़पा है। जो आज इस दुनिया में नहीं रहा, लेकिन आज भी रानीखेत के पहाड़ एक पिता के समान पुत्र का इंतज़ार कर रहे हैं। विश्वनाथ शहर में रहता है। पढ़ाई के लिए सालों पहले शहर आया। वह फिर कभी वापस गाँव नहीं गया। विलायत जाकर पढ़ने की विश्वनाथ की इच्छा उनके पिता कभी पूरा नहीं कर सके। इसलिए अपने पुत्र को उन्होंने विलायत पढ़ने भेजा, डॉक्टरी करायी, लेकिन जिस भांति वे अपने पिता के पास लौटकर नहीं गए उसी प्रकार उनका पुत्र भी विलायत का होकर रह गया। पुत्र-वियोग और पोते से मिलने की विश्वनाथ की असीम इच्छा दिल में ही कहीं दब सी गई। इस बीच अपने पुराने सामानों में उन्हें अपने पिता का खत व वसीयत मिलता है, जिसके पश्चात वे अपने गाँव के लिए निकल पड़ते हैं। गाँव में अब पिता नहीं रहे। लेकिन गाँव की सादगी वैसी ही बनी हुई है। जिस विश्वनाथ को उन्होंने सालों पहले कहीं खो दिया था उससे उनकी पुनः भेंट होती है। इसके पश्चात वे अपने बेटे के लिए भी खत लिखते हैं, उनके बेटे की वापसी के साथ उपन्यास का सुखांत होता है। इस प्रकार उपन्यास की सामान्य कथावस्तु अपनी समाप्ति को छूती है। लेकिन इससे आगे भी उपन्यास कुछ कहना चाहता है, जो इसे अन्य वृद्ध जीवन केंद्रित उपन्यासों से भिन्न बनाता है। जहाँ हमेशा वृद्धों की केवल लाचारी का चित्रण हुआ है, वहाँ यह उपन्यास एक नवीन आशा की किरण जगाता है। लेकिन इस सुखांत से अधिक महत्वपूर्ण प्रकृति व वृद्ध जीवन का सुंदर समन्वय है। इस उपन्यास में प्रतीकों के माध्यम से उपन्यासकार ने वृद्ध जीवन की तुलना प्रकृति से की है। पहाड़ जहाँ माँ-बाप का प्रतीक है वहाँ नदियाँ संतानें हैं। नदियाँ पहाड़ से निकलती हैं। लेकिन अंत में समुंदर में जा मिलना है। पहाड़ की गोद से निकलकर, अलग होकर समुद्रनुमा समाज के होकर वे रह जाती हैं। "'च्यला! देख, बहती हुई नदी और बड़ी होती औलाद को एक जगह बाँधकर नहीं रखा जा सकता। दोनों की प्रकृति ऐसी है कि बाहर निकलकर ही अपनी सार्थकता सिद्ध कर सकते हैं।... जब तक नदी इन पहाड़ों के सम्पर्क में रहती है तब तक अपने मूलस्वरूप में निश्छल भाव से बहती रहती हैं।'"[3]"एक पिता बेटे को सीख देता है, उदाहरण पहाड़ को कोख से निकली अमृतधारा से देता है, वह अमृत है फिर भी उसे रोककर नहीं रखा जा सकता। यह आज का आधुनिक सच है और पिता भी इस सच्चाई से वाकिफ हैं कि नदी को बाँध बनाकर रोका जा सकता है। पर नदी की सार्थकता बाँधने से अधिक बहने में है, लेकिन नदी और मनुष्य में थोड़ा फर्क है। नदी समन्दर में मिलकर सार्थक होती है, वैसे मनुष्य समाज में लौटकर होता है। बड़े स्तर पर देखें तो नदी का समन्दर में मिलना और मनुष्य का वापस अपनी जड़ों में मिलना ही महत्त्वपूर्ण है। लेकिन बाँध में बँधकर नदी के जल का जो हश्र होता है वही जड़ों से कटकर शहरी होकर रहने में आदमी का होता है।"[4]

इस प्रकार अपना अस्तित्व खोकर इंसान प्रकृति से दूर होता चला जाता है। जिस प्रकार विश्वनाथ अपने बेटे के लिए और उनके पिता उनके लिए तड़पे हैं उसी प्रकार प्रकृति भी अपनी संतानों के लिए तड़पती है। लेकिन उसकी संतानें ही उससे छुटकारा पाना चाहती हैं। संतानें ही प्रकृति के कसाई बने बैठी हैं।

"उखड़ गए हैं बड़े पुराने पेड़
और कंक्रीट के पसरते जंगल में
खो गई है इनकी पहचान
क्या तुमने कभी सुना है
सपनों में चमकती कुल्हाड़ियों के भय से
पेड़ों की चित्कार
सुना है कभी
रात के सन्नाटे में अंधेरे से मुँह ढाँप
किस कदर रोती है नदियाँ
बतियाया है कभी

गुमसुम बूढ़ी पृथ्वी से उसका दु:ख।"-
(बूढ़ी पृथ्वी का दुख -निर्मला पुतुल)

लेकिन फिर भी प्रकृति ममतामई माँ के समान अपने बच्चों की हमेशा इफ़ासत करती है। परंतु जिस भांति माँ को क्रोध आता है, वैसे ही प्रकृति भी भीषण रूप धारण करती है। लेकिन वह अपनी संतानों से कभी नफरत नहीं कर सकती।जिस प्रकार विश्वनाथ गाँव, ज़मीन व जंगल को भूलकर शहर का हो गया वैसे कभी पिता या प्रकृति नहीं कर सकते। वे कभी अपनी संतानों को भूल नहीं सकते। भले ही विश्वनाथ के पिता नहीं रहे, लेकिन पहाड़ों के लिए भी वह उनका बेटा है, जिसका वे सालों इंतज़ार करते हैं। जब वह लौटकर आता है तो उनका इंतज़ार भी पूर्ण हो जाता है, वे अपने को सार्थक समझने लगते हैं। लेकिन संतान ये सब समझने के लिए तैयार नहीं है, उनकी अपनी व्यस्तता व उसूल है, जिसमें पुरानी पीढ़ी 'फिट' नहीं बैठती। "क्या पापा?' आप भी बच्चों जैसी हरकतें करते हैं, अरे मैं अपना हॉस्पिटल देखूँ या आपकी खुशी में सम्मिलित होऊँ... रात का यह वक्त कोई फोन करने का है। त्योहार तो आते रहते हैं मैं फिर कभी देखूँगा।"[5] इस घोर असंवेदनाशील समय की यही सच्चाई है कि कोई किसी का नहीं है।एक ओर प्रकृति का शोषण हो रहा है तो दूसरी तरफ माता - पिता का। पूजनीय लोग आज तिरस्कार के पात्र बनते जा रहे हैं । ऐसे में उपन्यास इन दोनों के दुख को दरशाने का भरसक प्रयास है, एक पहाड़ी गाँव का तो दूसरा पिता का पहाड़ रूपी दुख, जिसका कोई मर्ज़ नहीं है। मर्ज़ है अपनापन, स्नेह और अपनों का साथ। लेकिन आज ये सब कमाना दौलत कमाने से भी अधिक मुश्किल है। हिन्दी साहित्य में प्रकृति और वृद्ध जीवन का सुंदर समन्वय पहले भी हुआ है। निर्मल वर्मा का, 'अंतिम अरण्य', पंकज बिष्ट का 'उस चिड़िया का नाम' आदि उपन्यास इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इन उपन्यासों में परोक्ष रूप से वृद्ध जीवन को प्रकृति के साथ जोड़कर देखने का प्रयास हुआ है। "वह आ रहे हैं। मैं उन्हें दूर से देख सकता हूँ।...वे अब पेड़ों के अंतिम झुरमुट में चले गए हैं, जिसकी हरियाली छत पर डूबते सूरज की एक पीली परत फैली है। उसके ऊपर परिंदों का रेला है, और उसके ऊपर आकाश, तारे, हवा... और फिर कुछ भी नहीं।"[6] अंधेरे अंतिम अरण्य में फंसे राही के समान वृद्धावस्था से लौटता कोई नहीं है। इस अवस्था के दुख हरेक की झोली के साथी हैं। वैसे ही प्रकृति भी एक सत्य है, जो इसकी गहराईयों में उतरने में सफल है, उसने जीवन का सच पहचान लिया है। इसी दृष्टि के साथ नेगी जी ने अपने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों से प्रेरणा ग्रहण कर परोक्ष नहीं बल्कि प्रत्यक्ष रूप से वृद्ध जीवन को प्रकृति के साथ पिरोने व प्रतीकात्मक ढंग से दोनों को एक दूसरे से जोड़ने का प्रयास करते हुए पारिस्थितिक वृद्धावस्था-विमर्श का नवीन पहल चलाया है।

संदर्भ

1.डॉ. मीना शर्मा, हिन्दी साहित्य पर्यावरणीय संवेदना, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 76

2. रमेशचंद्र मीणा, समकालीन विमर्शवादी उपन्यास, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, 2020, पृ. 143

3. सूरज सिंह नेगी, वसीयत, साहित्यागर प्रकाशन, जयपुर, 2018, पृ. 232

4. रमेशचंद्र मीणा, समकालीन विमर्शवादी उपन्यास, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, 2020, पृ. 146

5. सूरज सिंह नेगी, वसीयत, साहित्यागर प्रकाशन, जयपुर, 2018, पृ. 64

6. निर्मल वर्मा, अंतिम अरण्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000, पृ. 9

शोधार्थी, हिंदी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कोच्ची-682022, केरल।
मो. नं.- 9746182124
ईमेल- preethikanv1998@gmail.com

विद्यासागर नौटियाल के कथा साहित्य में मार्क्सवादी चेतना

◆हिमांशु विश्वकर्मा

शोध सार : विद्यासागर नौटियाल हिंदी साहित्य के उन प्रगतिशील कथाकारों में अग्रणी थे, जिन्होंने अपनी रचनाओं में समाज के शोषित, पीड़ित और वंचित वर्ग की आवाज़ को बुलंद किया। उनकी कहानियाँ और उपन्यास सामाजिक यथार्थ के दर्पण हैं, जिनमें तत्कालीन समाज की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विसंगतियाँ प्रतिबिंबित होती हैं, जिनमें मार्क्सवादी चेतना का स्वर अत्यंत मुखर है, जो उनके गहन सामाजिक सरोकारों और परिवर्तनकारी दृष्टिकोण का परिचायक है। इस शोध पत्र में, हम विद्यासागर नौटियाल के कथा साहित्य में मार्क्सवादी चेतना के विविध आयामों का गहन विश्लेषण करेंगे, उनके उपन्यासों और कहानियों के संदर्भों के साथ उनके मार्क्सवादी दृष्टिकोण को उनकी राजनीतिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में समझेंगे। उन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से समाज में व्याप्त आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विसंगतियों को उजागर किया है, और शोषण व अन्याय पर आधारित व्यवस्था पर कुठाराघात किया है।

बीज शब्द : कम्युनिस्ट, दमित चेतना, अस्मिता, लोकजीवन, स्त्री अस्मिता, वर्ग संघर्ष।

मूल आलेख : टिहरी गढ़वाल जब राजशाही के अंदर था, तो समाज कई तरह से दमित था। एक तरफ़ सारा भारत आज़ाद हो रहा था, तब टिहरीराजा मानवेन्द्र शाह से आज़ाद नहीं हुआ था और उसके विरोध में खड़ी हुई समाजवादी चेतना रंग सकलाना, कीर्तिनगर और मालीदेवल के 14 वर्षीय युवक की चेतना में भी क्रांति के स्वर फूट पड़े थे। 15 अगस्त 1947 को प्रताप इंटर कॉलेज में तिरंगा फहराने के लिए इस बालक को राजा के सिपाहियों ने सलाख़ों के पीछे डाल दिया। वह युवक विद्यासागर नौटियाल था, जिसका जन्म 29 सितंबर 1933 को टिहरी गढ़वाल (वर्तमान उत्तराखंड) के मालीदेवल गांव में हुआ था। उन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त की। छात्र जीवन से ही वे वामपंथी विचारधारा से प्रभावित थे और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़े रहे। वे एक सक्रिय राजनीतिक कार्यकर्ता थे और 1969 में उत्तर प्रदेश विधानसभा के सदस्य भी चुने गए। नौटियाल ने अपना साहित्यिक जीवन कविताओं से प्रारंभ किया, परंतु बाद में वे कहानी और उपन्यास लेखन की ओर प्रवृत्त हुए। नौटियाल के लेखन का मुख्य स्वर प्रगतिशील और जनवादी रहा है। उन्होंने अपनी रचनाओं में समाज के वंचित, शोषित और पीड़ित वर्ग के जीवन की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। वे आजीवन सामाजिक न्याय, समानता और शोषण-मुक्ति के लिए संघर्षरत रहे। उनका निधन 18 फरवरी, 2012 को देहरादून में हुआ।

विद्यासागर नौटियाल के कथा साहित्य में आर्थिक विषमता और वर्ग संघर्ष का चित्रण अत्यंत प्रमुखता से हुआ है। उन्होंने अपनी रचनाओं में पूंजीवादी और सामंतवादी व्यवस्था द्वारा किए जा रहे आर्थिक शोषण को उजागर किया है। नौटियाल जी ने अपनी रचनाओं में किसानों और भूमिहीनों की दरिद्र अवस्था का मार्मिक चित्रण किया है। वे दर्शाते हैं कि किस प्रकार ज़मींदार और साहूकार किसानों का शोषण करते हैं, उन्हें ऋण के जाल में फँसाते हैं, उनसे बेगारी करवाते हैं और उनकी भूमि हड़प लेते हैं। **भैंस का कट्या**'कहानी में होंसियारू नामक एक गरीब किसान की आर्थिक विपन्नता का हृदय विदारक चित्रण है। भैंस का दूध सूख जाना उसके लिए किसी त्रासदी से कम नहीं है, क्योंकि उसी के सहारे उसके परिवार का भरण-पोषण होता था। कहानी में होंसियारू की पत्नी का कथन इस दयनीय स्थिति को

दर्शाता है, "यही तो मुसीबत है। दूध देना तो पाप है। अपने आप गाय-भैंस पाल नहीं सकते और दूसरे के मवेशियों को टोना-टटमोना करते रहते हैं।"[1] यह कथन ग्रामीण समाज में व्याप्त आर्थिक शोषण और उसके कारण उत्पन्न होने वाली विवशता को उजागर करता है। साथ ही राजा के नाम पर पुलिसवाले मोल-तोल कर आगामी शाही त्योहार में बली के लिए गरीब होंसियारू के परिवार के सदस्य जैसे भैंस का कट्ये को उससे छीनकर उनके सुखी परिवार को तोड़ देते हैं - "पतले, छरहरे बदन के पुलिसवाले ने, जिसकी आँखें पूरी थीं, कहा-हाँ, अब मोल-तोल रहा। मैं तो कहता हूँ, हम ले जाएँ और कीमत दरबार ही तय कर ले। महाराज खुश हो जाएँगे, तो कमी किस चीज़ की है? ऐसी कीमत मिलेगी, जो जिंदगी भर याद रखेगा। राजाओं की बात ही और होती है।"[2] **फट जा पंचधार**'कहानी में रक्खी नामक कोल्टा (दलित) स्त्री की दारुण कथा है, जिसे उसके पिता और दादा के ऋण के बदले में सवर्ण वीरसिंह अपनी रखैल बना लेता है। रक्खी का जीवन ज़मींदारी प्रथा और जातिगत भेदभाव के कारण शोषण और अपमान का शिकार बनता है। "ब्राह्मण ने सयाणों को शास्त्र की बातें बताई'... वह बार-बार कह रहा था- अगम्यागमन।बता रहा था कि इसका मलतब होता है – 'वहाँ जाना जहाँ नहीं जाना चाहिए।' ऊँची कौम का आदमी डोम औरत के साथ रहने लगे या कोई अपनी ऐसी रिश्तेदार के साथ हम-बिस्तरी कर बैठे जिससे रिश्ते के मुताबिक वह शादी नहीं कर सकता, तो वह अपने किए पर पछतावा कर सकता है। यानी ऐसा करके उसकी शुद्धि हो सकती है।"[3] यह उद्धरण स्पष्ट करता है कि कैसे समाज में दलितों को दोयम दर्जे का समझा जाता था और सामंती मानसिकता के कारण उनके साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता था। 'उत्तर बायां है' उपन्यास में टिहरी रियासत के किसानों की बदहाली का चित्रण है। उन पर थोपे गए अत्यधिक कर, बेगारी और सामंती अत्याचारों के कारण किसानों का जीवन नरकीय बन गया है। 'रियासत के जो हुक्म-हाकिम हैं, क्या मजाल कि वे उनकी डियढ़ी लाँघ सकें। राजा, राज-परिवार के कुँवर-कुँवरियाँ और मंत्री-मुसाहिब—उनके पास तो फटक भी नहीं सकते थे।"[4] ये पंक्तियाँ दर्शाती हैं कि किस प्रकार सामंती व्यवस्था में किसानों को सामाजिक और आर्थिक रूप से दबाकर रखा जाता था। **'भीम अकेला'**उपन्यास में भी आर्थिक शोषण और उसके विरुद्ध संघर्ष की कथा है। उन्ही में से एक पात्र तेजसिंह, जो कि एक स्वतंत्रता सेनानी है, ऋणग्रस्तता और सरकार के अत्याचारों से त्रस्त होकर अपनी कथा सुनाता है। "तेज सिंह फिर फूट-फूटकर रोने लगा। आर्थिक स्थिति ने उसे पस्त कर दिया है। स्वतंत्रता सेनानियों के नाम पर शोहदों ने क्या-क्या फायदे नहीं उठाये? लेकिन तेजसिंह जैसा का तैसा है। आज़ाद हिंदुस्तान पर शासन कर रहे राजनेताओं ने उसके एक भी बेटे को नौकरी पर लगाना तक जरूरी नहीं समझा।"[5] यह उद्धरण तत्कालीन समाज में व्याप्त बेरोज़गारी और उसके कारण युवाओं में व्याप्त असंतोष को दर्शाता है, जो अक्सर उन्हें अपराध की ओर धकेल देता था।

'मोहन गाता जाएगा' आत्मकथात्मक उपन्यास में नौटियाल ने अपने जीवन के अनुभवों के माध्यम से जनता के जीवन की कठिनाइयों को दर्शाया है। " पहाड़ अपनी जगह खड़ा तह जाता है, हम ब्लास्टिंग करें और वह फ़वाँ, एक कमिश्नरी मजदूर के चीथड़े-चिथड़े। फिर ब्लास्टिंग फिर फ़वाँ। दूसरा कमिश्नरी फिर फ़वाँ। सात बार ब्लास्टिंग में छः कमिश्नरी फ़वाँ हो गए थे गुरुजी"[6] तब से टिहरी गढ़वाल के सामन्ती राज का दौर था जनता केवल खेती पर निर्भर थी, रियासत का काम रिस्की था तो वे लोग गंगाजल भरकर बाहर शहरों को बेचने निकल जाया करते। उन्होंने अपनी रचनाओं में शहरी गरीबी और बेरोज़गारी का भी यथार्थ चित्रण किया है। वे दर्शाते हैं कि किस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों से रोजगार की तलाश में शहर आए लोग झुग्गी-झोपड़ियों में रहने

को मज़बूर होते हैं और उन्हें अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।**'गलतफहमी'**कहानी में बेरोज़गारी की समस्या से जूझते हुए एक युवक की मनोव्यथा का चित्रण है, जो रोज़गार न मिलने पर पैदल ही अपने गांव जाने का निश्चय करता है। 'आखिर जब एक रूपए और छह आने बचे तो मैंने पैदल ही चलने का निश्चय किया। रात-भर एक पिटठू (पीठ पर लगाया जाने वाला बड़ा थैला) एक काँधा (कंधे पर लटकाए जाने वाला छोटा थैला) को ठीक करता रहा। बिस्तर बाँधे, किताबें बाँधीं। देहरादून के मित्रों को जिन्हें बिना सूचित किए जा रहा था – पत्र लिखे, एक पड़ोसी मित्र को दे दिए वे सब पत्र। बिना तनख्वाह का चिट्ठीरसाँ बन गया था वह बेचारा।"[7] यह कहानी आर्थिक तंगी और बेकारी के कारण उत्पन्न हताशा और विवशता को दर्शाती है। **'मरघट के उस पार'** कहानी में शंकर सिंह नामक एक बेरोज़गार युवक की कहानी है, जो रोज़गार की तलाश में शहर आता है और उसे मरघट की रखवाली का काम मिलता है। 'गांव से रोज़गार की तलाश में आया था। दुकानों पर काम खोज रहा था। इन लोगों ने यहाँ लगा दिया।"[8] यह कहानी शहरी जीवन में व्याप्त संघर्ष और निम्न वर्ग के लोगों की दयनीय स्थिति को दर्शाती है।

विद्यासागर नौटियाल के कथा साहित्य में केवल आर्थिक शोषण ही नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय और उत्पीड़न का भी सशक्त चित्रण हुआ है। उन्होंने जातिगत भेदभाव, लैंगिक असमानता और सामंती मानसिकता जैसी सामाजिक बुराइयों पर कुठाराघात किया है।अपनी रचनाओं में जातिगत भेदभाव और दलित उत्पीड़न का मार्मिक चित्रण किया है। उन्होंने दर्शाया है कि किस प्रकार सवर्ण जातियाँ दलितों को हेय दृष्टि से देखती हैं, उन्हें अस्पृश्य मानती हैं और उन पर अत्याचार करती हैं। **'स्वर्ग दद्दा! पाणि, पाणि'** उपन्यास में दलितों की दयनीय स्थिति का चित्रण करते हुए लेखक लिखता है, 'सितानू हरिजन था। बहू राजपूत। वह उसके उसके भाँडे को उठा कर पानी की गिरती धार के नीचे नहीं रख सकती थी। किसी सवर्ण का बर्तन होता तो वह वैसा कर लेती। लेकिन उसके बर्तन को वह हाथ नहीं लगा सकती थी। किसी सवर्ण का बर्तन होता तो वह वैसा कर लेती। लेकिन उसके बर्तन पर वह हाथ नहीं लगा सकती थी। हाथ लगा देने से उसके गीले हाथ के कारण उसके बर्तन में भरे हुए पानी को छूत लग जाती"[9] ये पंक्तियाँ दर्शाती हैं कि किस प्रकार जातिगत भेदभाव दैनिक जीवन में व्याप्त था, जबकि सितानू के दादा ने अपनी पूरी उम्र लगाकर उस धारे के पानी को खोजा था और उस धारे को श्रमदान में बनाया था। परंतु आज भी दलितों को पानी जैसी मूलभूत आवश्यकता के लिए भी अपमान सहना पड़ता है।

नौटियाल ने अपनी रचनाओं में लैंगिक असमानता और स्त्री-शोषण का भी यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने दर्शाया है कि किस प्रकार पितृसत्तात्मक समाज में महिलाओं को दोयम दर्जे का नागरिक समझा जाता है, उन्हें शिक्षा और रोज़गार के अवसरों से वंचित रखा जाता है और उन्हें घरेलू हिंसा और अत्याचार का सामना करना पड़ता है। **'बागी टिहरी गाये जा'** कृति में, सामंती समाज में स्त्री की स्थिति का वर्णन करते हुए, लेखक लिखते हैं, "सामंती समाज में औरत और पशु के साथ एक जैसा व्यवहार था दोनों का दरजा समान होता था। औरत को पशु की तरह कोई जानवर बिक जाने पर अपने खूंटे से बेदखल करके किसी दूसरे खूंटे पर बांध लिया जाता है, तगड़ा मोल देकर खरीदी गई औरत भी एक घर से हटाई जाकर समाज के जटिल रीति-रिवाजों और राज्य के कानूनों की सख्त डोर से दूसरे घर की चौहद्दी के अन्दर, किसी दूसरे मर्द की चौकसी में बांध दी जाती थी।"[10] यह स्त्री की दयनीय स्थिति और पुरुष प्रधान समाज में उसकी पराधीनता को दर्शाता है। **'घास'** कहानी में रूपसा नामक स्त्री का संघर्ष दिखाया गया है, जो परिवार के भरण-पोषण के लिए कठिन परिश्रम करती है। जब वह जंगल घास काटने जाती है

तो जंगल ला सिरोला किस प्रकार रूपसा की आर्थिक स्थिति का फायदा उठाकर उसे घास के लिए यौन रूप से प्रताड़ित करता है। "रूपसा दौड़ने लगी, उसे अपनी घसियारिन सहेलियों के झुण्ड के साथ होने की जल्दी थी। किसी अकेली घसियारिन का इस अंधेरे में दौड़ना ठीक नहीं था। पर उसका अकेला होना भी ठीक नहीं था। वह दौड़ने लगी। दौड़ते-दौड़ते उसे अपने पति की याद हो आई। उसका पति भी इस समय कहीं दौड़ लगा रहा होगा।"[11] यह कथन दर्शाता है कि कैसे महिलाएँ आर्थिक रूप से भी परिवार का आधार थीं और उन्हें अनेक ज़िम्मेदारियों का बोझ उठाना पड़ता था।नौटियाल ने अपनी रचनाओं में सामंती मानसिकता का भी पर्दाफाश किया है। उन्होंने दर्शाया है कि किस प्रकार सामंतवाद रूढ़िवाद, अंधविश्वास और परंपरागत मान्यताओं को बढ़ावा देता है और सामाजिक प्रगति में बाधक बनता है। **'फुलियारी'** कहानी में समाज में व्याप्त रूढ़िवादी मानसिकता को दर्शाया गया है। "जिस घर में किसी त्यौहार के दिन कोई मृत्यु हो जाए वहाँ 'हाड़' पड़ जाता है। वहाँ का वह त्यौहार सदा के लिए बंद हो जाता है।"[12] यह उदाहरण अंधविश्वास और सामाजिक कुरीतियों को उजागर करता है।

विद्यासागर नौटियाल का कथा साहित्य केवल सामाजिक-आर्थिक विसंगतियों का चित्रण मात्र नहीं है, बल्कि इसमें राजनीतिक चेतना और व्यवस्था-विरोध का स्वर भी अत्यंत प्रखर है। वे अपनी रचनाओं में सामंती शासन, औपनिवेशिक शासन और स्वतंत्र भारत में व्याप्त भ्रष्टाचार और राजनीतिक पतन का विरोध करते हैं। 'उत्तर बायां है' उपन्यास टिहरी रियासत के सामंती शासन के खिलाफ जन-आंदोलन का महाकाव्यात्मक चित्रण है। उपन्यास में प्रजामंडल के गठन और उसके नेतृत्व में किसानों और आम जनता के संघर्ष को दर्शाया गया है। प्रजामंडल के नेतृत्व में चले इस ऐतिहासिक आंदोलन में रियासत के हज़ारों-हज़ारों किसानों, औरतों और बच्चों ने हिस्सेदारी की। उपन्यास में 1947-48 के दौरान टिहरी रियासत में हुए ऐतिहासिक जन-आंदोलन का सजीव चित्रण है, जिसमें सामंती अत्याचारों से त्रस्त जनता ने 'प्रजा मंडल' के नेतृत्व में विद्रोह किया था। उसी दौरान आज़ादी मिलते ही, पड़ोसी हिन्दुस्तान में साम्प्रदायिक दंगों की शुरुआत हो गई। पाकिस्तान में हिन्दुओं और भारत में मुसलमानों का सामूहिक संहार किया जाने लगा।उस समय राजनीतिक अस्थिरता और विभाजन का प्रभाव समाज पर भी पड़ा था। **'बागी टिहरी गाये जा'**कृति में भी टिहरी रियासत के खिलाफ चले जन-आंदोलन का वर्णन है। "राजा के राज के हिस्से हम अपने बाप-दादों से सुनते हैं। तब जबर्दस्ती बेगार करवाई जाती थी। जनता को वह राज बुरा लगा। राजशाही के खिलाफ ढंढफ शुरू हुआ....., सामंती युग के उन क्रूर क़ानूनों के ख़िलाफ़ था टिहरी की जनता का वह विद्रोह, जिसने सामंतशाही की चूलों को हिलाकर रख दिया था। राजा गया, पर राजा के युग के कानून नहीं गए।"[13] यह कथन जनता में सामंती शासन के प्रति व्याप्त रोष और असंतोष को दर्शाता है। नौटियाल ने अपनी रचनाओं में औपनिवेशिक शासन का भी विरोध किया है। उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लिया था और ब्रिटिश शासन की जनविरोधी नीतियों की आलोचना की थी। **'मेरा जीवन एक खुली पुस्तक है'**कहानी में नौटियाल जी ने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान अपनी सक्रियता का उल्लेख किया है। "यही कुछ देश-सेवा। मकानों के किराए से ही पेट पल जाता है। यह चित्र उस समय का है जब मैं सन् 42 में गिरफ्तार हुआ था। जो इर्द-गिर्द जमा है, अब भूल चुकी है कि कभी मैंने भी त्याग किया था।"[14] यह कथन दर्शाता है कि वे केवल लेखक ही नहीं, बल्कि एक सक्रिय स्वतंत्रता सेनानी भी थे। स्वतंत्रता के बाद नौटियाल स्वतंत्र भारत में व्याप्त भ्रष्टाचार और राजनीतिक पतन से दुखी थे। उन्होंने अपनी रचनाओं में इस मोहभंग को भी व्यक्त किया है।

नौटियाल सामाजिक परिवर्तन के लिए यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाते हैं। वे क्रांतिकारी

बदलाव के साथ-साथ सुधारवादी प्रयासों का भी समर्थन करते हैं। 'भीम अकेला' में भीम जहाँ एक ओर क्रांतिकारी रास्ते पर चलता है, वहीं दूसरी ओर, व्यवस्था में रहकर भी, संघर्ष करता दिखाया गया है। विद्यासागर नौटियाल ने 'द फिफ्थ फ्लोर' के लिए लक्ष्मण व्यास को दिए गए एक साक्षात्कार में अपनी रचनाओं, अपने जीवन और अपने समय के विषय में विस्तार से बात की थी। इस बातचीत में उनके मार्क्सवादी दृष्टिकोण और राजनीतिक चेतना से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण बातें सामने आती हैं। राजनीतिक जुड़ाव के संबंध में नौटियाल ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि वे छात्र जीवन से ही वामपंथी विचारधारा से प्रभावित थे और कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़े थे। उन्होंने कहा, 'मैं सोलह बरस का था, तभी से कम्युनिस्ट पार्टी का मेम्बर था।शोषण के विरुद्ध संघर्ष बातचीत में नौटियाल जी ने टिहरी रियासत में व्याप्त सामंती शोषण और उसके विरुद्ध चले जन-आंदोलनों का जिक्र किया। उन्होंने बताया कि कैसे उन्होंने इन आंदोलनों में सक्रिय भूमिका निभाई और जनता को जागरूक करने का प्रयास किया। कामरेड नागेंद्र सकलानी, जिन्होंने शहादत दी थी, वह मेरे आदर्श थे।"[15] यह कथन उनके क्रांतिकारी भावना और सामाजिक परिवर्तन के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को दर्शाता है। लेखन का उद्देश्य नौटियाल ने स्पष्ट किया है कि उनका लेखन केवल मनोरंजन के लिए नहीं था, बल्कि समाज में व्याप्त अन्याय और शोषण को उजागर करने और लोगों में चेतना जगाने का एक माध्यम था। जब व्यास नौटियाल से सवाल करते हैं कि सामंती युग की समस्याओं से आच्छादित कहानियों की आज कितनी सार्थकता है? तब विद्यासागर कहते हैं, "सामन्ती जीवन अभी समाप्त कहाँ हुआ है? सामन्ती शासन खत्म हुए हैं लेकिन समाज में सामन्ती प्रवृत्तियाँ तो काफी हद तक जस-की-तस कायम हैं। हर परिवार का पुरुष अपने घर में एक छोटा-मोटा सामन्त होता है। उस युग की कहानियाँ समाज की नई पीढ़ी के सामने एक आईने का काम निभाती रहेंगी, ऐसा मेरा विश्वास है।"[16] मार्क्सवाद का प्रभाव को नौटियाल ने स्वीकार किया कि उनके लेखन पर मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव रहा। उन्होंने कहा, "मैं केवल वही लिखता हूँ, जिसमें मेरा विश्वास है।"[17] उनका यह विश्वास मार्क्सवादी विचारधारा में उनकी दृढ़ आस्था को दर्शाता है। यह बातचीत विद्यासागर नौटियाल के मार्क्सवादी दृष्टिकोण को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इससे पता चलता है कि वे केवल एक लेखक ही नहीं, बल्कि एक सक्रिय राजनीतिक कार्यकर्ता भी थे, जिन्होंने अपनी रचनाओं और अपने कर्म, दोनों से समाज में परिवर्तन लाने का प्रयास किया।

निष्कर्ष:

विद्यासागर नौटियाल का कथा साहित्य मार्क्सवादी चेतना से परिपूर्ण है। उन्होंने अपनी रचनाओं में आर्थिक विषमता, वर्ग संघर्ष, सामाजिक अन्याय, राजनीतिक विसंगतियों और शोषण के विविध रूपों का यथार्थ चित्रण किया है।उनके पात्र निष्क्रिय नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक परिवर्तन के लिए संघर्ष करते हैं। इसलिए उन्हें उत्तराखंड का प्रेमचंद भी कहा जाता है। नौटियाल का मार्क्सवादी दृष्टिकोण उनकी राजनीतिक चेतना में भी प्रतिबिंबित होता है। वे टिहरी रियासत के खिलाफ जन-आंदोलन में सक्रिय रूप से शामिल थे और जीवन भर शोषितों और वंचितों के लिए संघर्ष करते रहे। उनका कथा साहित्य हिंदी के प्रगतिशील साहित्य की महत्वपूर्ण धरोहर है जो आज भी प्रासंगिक है और सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष की प्रेरणा देता है। लक्ष्मण व्यास के साथ हुई बातचीत उनके विचारों और रचना-दृष्टि को समझने का महत्वपूर्ण स्रोत है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. विद्यासागर नौटियाल, टिहरी की कहानियाँ, आधार प्रकाशन, पंचकुला, 2000, पृ1 .22
2. वही, पृ1 .23
3. विद्यासागर नौटियाल ,फट जा पंचधार, संकलित कहानियाँ, नेशनल बुक ट्रस्ट, 2013, पृ.73

4. विद्यासागर नौटियाल, उत्तर बायां है, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2003, पृ .218
5. विद्यासागर नौटियाल, भीम अकेला, पेंगुइन बुक्स, नयी दिल्ली, 2008, पृ. 60
6. विद्यासागर नौटियाल, मोहन गाता जाएगा,राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2004, पृ179 .
7. विद्यासागर नौटियाल, टिहरी की कहानियां, आधार प्रकाशन, पंचकुला 2000, पृ61 .
8. विद्यासागर नौटियाल, संकलित कहानियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ83 .
9. विद्यासागर नौटियाल, स्वर्ग दद्दापाणि !, पाणि, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ .205
10. विद्यासागर नौटियाल, बागी टिहरी गाये जा, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, 2000, पृ. 134
11. विद्यासागर नौटियाल, मेरी कथा यात्रा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृ. 121
12. वही, पृ. 153
13. विद्यासागर नौटियाल, बागी टिहरी गाये जा, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, 2000, पृ. 105
14. विद्यासागर नौटियाल, मेरी कथा यात्रा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृ. 134
15. https://thefifthfloordotin.wordpress.com/2015/12/28/
16. वही, https://thefifthfloordotin.wordpress.com/2015/12/28/
17. सुभाष पन्त, "लोक गंगा", अंक-57, जनवरी 2008, संपादक- लक्ष्मण 'पथिक', पृ. 197

◆शोधार्थी
हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
डी.एस.बी.परिसर नैनीताल, कुमाऊँ विश्वविद्यालय।
सम्पर्क : iamhimanshuvishwakarma@gmail.com
फोन : 7017168525

कबीर का साहित्य और वर्तमान समाजः एक तुलनात्मक अध्ययन

◆रचना देवी ◆◆ डॉ. शिव प्रकाश त्रिपाठी ◆◆◆ डॉ. राजेश कुमार चौधरी

भूमिकाः कबीर दास 15 वीं सदी के महान संत और कवि, भारतीय भक्ति आंदोलन के प्रमुख स्तंभों में से एक थे। उनका साहित्य न केवल उनके समय की सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों को प्रतिबिंबित करता है, बल्कि यह आज के समाज के लिए भी उतना ही प्रासंगिक है । उनके दोहे और पद आज भी मानवता, समानता, और भाईचारे के संदेश देते हैं। इस शोधपत्र में कबीर के साहित्य और वर्तमान समाज के बीच तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाएगा।

कबीर का जीवन और उनका साहित्यः कबीर दास का जन्म वाराणसी के पास लहरतारा में हुआ था। वे एक जुलाहे के रूप में कार्य करते थे, और उनके जीवन में धर्म, जाति और सामाजिक बंधनों का कोई स्थान नहीं था। उनके साहित्य में मुख्यतः दोहे, पद और साखी शामिल हैं। उनके काव्य में सरल भाषा और प्रतीकों का प्रयोग हुआ है, जो उनकी विचारधारा को जनता तक पहुँचाने का एक प्रभावी माध्यम बना।

1. कबीर के साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ:

1. सामाजिक समानता का संदेशः कबीर के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सामाजिक समानता पर जोर दिया[1]। उनके अनुसार, सभी मनुष्य समान हैं और जाति या धर्म के आधार पर भेदभाव करना अनुचित है। उनके दोहे "जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान" समाज में समानता के इस संदेश को दृढ़ता से स्थापित करते हैं।

2. अंधविश्वास और पाखंड का विरोधः कबीर ने अपने साहित्य में अंधविश्वास और पाखंड का कड़ा विरोध किया। वे धर्म के नाम पर होने वाले बाह्य आडंबर और कर्मकांडों के विरुद्ध थे[2]। उन्होंने कहाः "*माला फेरत जुग भया, मिटा न मन का फेर। कर का मनका डार दे, मन का मनका फेर*"

3. भाषा की सरलता और प्रभावशीलताः कबीर की भाषा सरल, सुगम और जनमानस की बोली में थी। उन्होंने अवधी, ब्रजभाषा और खड़ी बोली का प्रयोग किया, जिससे उनका साहित्य आम जनता के लिए सहज और बोधगम्य बन गया। उनकी रचनाएँ प्रतीकात्मक और सहज थीं, जो गूढ़ से गूढ़ संदेश को सरलता से व्यक्त करती थी[3]।

4. धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोणः कबीर ने हिंदू और मुस्लिम, दोनों धर्मों के कट्टरता और पाखंड का विरोध किया। उन्होंने एक ईश्वर की अवधारणा को महत्व दिया और कहा कि सभी धर्मों का लक्ष्य एक ही है। उन्होंने लिखाः "*कंकर-पाथर जोड़ के, मस्जिद लई बनाय। ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय*"।

5. मानवता का संदेशः कबीर के साहित्य में मानवता का विशेष महत्व है। उनके अनुसार, मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म मानवता है। वे कहते हैं: "*साधु ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय। सार-सार को गहि रहे, थोथा देई उड़ाय*"।

6. आध्यात्मिकता और भक्ति का महत्वः कबीर का साहित्य आत्मज्ञान और भक्ति पर आधारित है। वे कर्मकांडों की अपेक्षा आत्मा की शुद्धता और सच्ची भक्ति पर जोर देते हैं। उनका मानना था कि ईश्वर को मंदिर या मस्जिद में नहीं, बल्कि अपने भीतर ढूंढना चाहिए। उन्होंने कहाः "*मोको कहाँ ढूंढे रे बंदे, मैं तो तेरे पास में। ना तीरथ में, ना मूरत में, ना एकांत निवास में*"।

7. प्रकृति और प्रतीकों का प्रयोगः कबीर ने अपनी रचनाओं में प्रकृति और प्रतीकों का अद्भुत उपयोग किया है। उनके काव्य में गाय, गंगा, माला, और चिड़िया जैसे प्रतीक आम जीवन के गूढ़ सत्य को समझाने के लिए उपयोग किए गए हैं।

8. समाज सुधार का लक्ष्यः कबीर का साहित्य समाज सुधार का साधन था। उन्होंने समाज में व्याप्त बुराइयों जैसे जातिवाद, धर्मांधता, और भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए साहित्य को माध्यम बनाया। उनके दोहे लोगों को आत्मज्ञान और सदाचार की प्रेरणा देते हैं।

9. सहजयोग और व्यक्तिगत अनुभवः कबीर ने भक्ति और आत्मज्ञान के लिए सहजयोग का मार्ग अपनाने की बात की। उनके साहित्य में व्यक्तिगत अनुभव और साधना का विशेष महत्व है[4]। उन्होंने आत्मा और परमात्मा के मिलन को अपने अनुभव के माध्यम से व्यक्त किया है।

10. स्त्री सम्मानः कबीर ने स्त्रियों का सम्मान करने की बात कही। उनके अनुसार, स्त्री और पुरुष दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। उनके दोहे इस बात की पुष्टि करते हैं: "*नारी नर की खाल है, नारी नर का रंग। नारी नर का बंधन है, नर नारी का संग*"।

2. वर्तमान समाज की चुनौतियाँ:

आज का समाज अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना कर रहा है, जैसे जाति-भेद, धार्मिक असहिष्णुता, अंधविश्वास, और सामाजिक असमानता। इन समस्याओं का समाधान कबीर के साहित्य में निहित है[5]।

2.1. **जाति-भेदः** जाति-आधारित भेदभाव भारतीय समाज की गहरी समस्या रही है। यह समस्या आज भी विभिन्न क्षेत्रों में मौजूद है, चाहे वह शिक्षा, रोजगार, या सामाजिक संबंधों की बात हो[6]। कबीर ने अपने साहित्य के माध्यम से जाति-भेद की इस समस्या पर तीव्र प्रहार किया। उनके दोहे "**सब जाति**

एक है" यह संदेश देते हैं कि मानवता ही सबसे बड़ा धर्म है। उन्होंने जाति-पांति के बंधनों को तोड़ने की अपील की और समाज को यह समझाने की कोशिश की कि सभी मनुष्य एक ही ईश्वर की संतान हैं।

कबीर ने कहाः "*अव्वल अल्लाह नूर उपाया, कुदरत के सब बंदे। एक नूर ते सब जग उपजा, कौन भले कौन मंदे*"। उनके इस संदेश में स्पष्ट है कि समाज में जाति-भेद का कोई स्थान नहीं होना चाहिए[7]। आधुनिक समाज में भी यह विचार प्रासंगिक है, जहाँ जाति-आधारित भेदभाव अभी भी बड़े पैमाने पर मौजूद है। कबीर के विचार समानता और समरसता को बढ़ावा देते हैं, जो सामाजिक समरसता के लिए अत्यंत आवश्यक है।

2.2. **धार्मिक असहिष्णुताः** वर्तमान समय में धार्मिक असहिष्णुता एक गंभीर समस्या बन चुकी है। धर्म के नाम पर हो रही हिंसा और असहिष्णुता समाज में विभाजन पैदा कर रही है। कबीर ने इस समस्या को गहराई से समझा और अपने साहित्य में इसका समाधान प्रस्तुत किया। उनका संदेश "**अल्लाह-राम का एक ही रूप**" इस बात का प्रतीक है कि सभी धर्मों का सार एक ही है।

कबीर ने लिखाः "*कबीर यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहि। सीस उतारे भुईं धरे, तब बैठे घर माहि*"।

कबीर के इन विचारों में धार्मिक सहिष्णुता और भाईचारे का संदेश निहित है। यदि आज के समाज में इस विचार को अपनाया जाए, तो धर्म के नाम पर होने वाले संघर्षों और हिंसा को रोका जा सकता है[8]।

2.3. **अंधविश्वासः** अंधविश्वास और धार्मिक पाखंड आधुनिक समाज की एक और बड़ी समस्या है। लोग आज भी तंत्र-मंत्र, जादू-टोना, और अन्य अंधविश्वासों में विश्वास करते हैं, जो समाज को प्रगति के मार्ग पर बाधित करते हैं। कबीर ने अपने साहित्य में इन अंधविश्वासों की आलोचना की और लोगों को आत्मज्ञान की ओर प्रेरित किया।

उन्होंने कहाः "*पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार। घर की चाकी कोई ना पूजे, जिसका पीसा खाए संसार*"।

कबीर ने यह संदेश दिया कि ईश्वर को बाहरी साधनों से नहीं, बल्कि अपने भीतर ढूंढा जाना चाहिए। उन्होंने अंधविश्वास के स्थान पर आत्मज्ञान और विवेक को महत्व दिया[9]। आज के समय में कबीर के इस विचार को अपनाकर समाज में व्याप्त अंधविश्वास को समाप्त किया जा सकता है।

2.4. **सामाजिक असमानताः** समाज में अमीरी-गरीबी की खाई, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की असमानता जैसी समस्याएँ भी कबीर के समय से ही प्रासंगिक रही हैं[10]। कबीर ने अपने साहित्य के माध्यम से इस असमानता पर भी प्रश्न उठाए। उनका मानना था कि सभी मनुष्यों को समान अधिकार और सम्मान मिलना चाहिए।

उन्होंने कहाः "*साधु ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय। सार-सार को गहि रहे, थोथा देई उड़ाय*"।

इस दोहे में कबीर ने समाज को यह संदेश दिया कि हमें केवल सार्थक और सच्चे विचारों को ही अपनाना चाहिए और असमानता को दूर करने के प्रयास करने चाहिए[11]। कबीर साहित्य और वर्तमान समाज के बीच तुलनात्मक अध्ययनः कबीर का साहित्य न केवल उनके समय के सामाजिक और धार्मिक मुद्दों पर प्रकाश डालता है, बल्कि यह वर्तमान समाज में भी प्रेरणा का स्रोत है। उदाहरण के लिएः

1. सामाजिक समानताः कबीर का संदेश

कबीर का एक प्रसिद्ध दोहा हैः

"*एक बूंद एक मल मूतर, एक चाम एक गूदा।*
एक जोति से सब उपजा, कौन भला कौन मंदा"।

यह दोहा कबीर की सामाजिक समानता के प्रति गहरी चिंता को व्यक्त करता है। कबीर का मानना था कि समाज में कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए, क्योंकि हर व्यक्ति एक ही परमात्मा का अंश है। यह विचार उस समय के जातिवाद और सामाजिक

असमानता के खिलाफ था। कबीर का यह संदेश आज भी अत्यंत प्रासंगिक है, जब समाज में भेदभाव और असमानताएं अब भी मौजूद हैं। आधुनिक समाज में जातिवाद, लिंगभेद, और आर्थिक असमानताएं आम समस्या हैं। कबीर का यह संदेश हमें यह समझाने में मदद करता है कि सभी इंसान एक जैसे हैं, और किसी भी कारण से समाज में असमानता नहीं होनी चाहिए। आज के समाज में कबीर के इस विचार को हम विभिन्न सामाजिक आंदोलनों में देख सकते हैं, जैसे दलित अधिकार, समानता के लिए लड़ा जाने वाला संघर्ष, और महिला अधिकारों की बात। यह कबीर का सिद्धांत है कि यदि हम सभी को समान मानते हैं, तो हम एक समृद्ध और संतुलित समाज बना सकते हैं, जहां हर किसी को समान अधिकार मिलें[12]।

2. धर्मनिरपेक्षताः कबीर का संदेश

कबीर का साहित्य विशेष रूप से धर्मनिरपेक्षता और धार्मिक कट्टरता के खिलाफ एक शक्तिशाली विरोध था। एक प्रसिद्ध कबीर का दोहा हैः

"*कंकर-पाथर जोड़ के, मस्जिद लई बनाय।*

ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय"।

यह दोहा धार्मिक आस्था और रिवाजों की कट्टरता पर कटाक्ष करता है। कबीर का मानना था कि धर्म के नाम पर किसी भी प्रकार की मूर्तिपूजा या बाहरी प्रदर्शन केवल दिखावा है, जबकि असली धर्म तो आत्मा का शुद्धिकरण और इंसानियत के प्रति सच्चे भावों में निहित है[13]। उन्होंने धर्म, समाज और आध्यात्मिकता को एक नज़रिया देने की कोशिश की, जिसमें किसी भी धर्म विशेष के प्रति पक्षपाती दृष्टिकोण को नकारा गया है। उनका उद्देश्य था कि इंसान को न किसी मंदिर-मस्जिद की जरूरत है और न ही किसी पूजा-पाठ की। असली ईश्वर तो इंसान के दिल में वास करता है।आज के समाज में, जहाँ धार्मिक संघर्ष, कट्टरवाद और आतंकवाद जैसी समस्याएँ आम हो गई हैं, कबीर का यह संदेश बहुत महत्वपूर्ण है। यह हमें यह भी समझाता है कि धर्म के नाम पर हिंसा और विवादों का कोई स्थान नहीं होना चाहिए। इसलिए, कबीर का यह संदेश आज भी धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

3. महिला सशक्तिकरणः कबीर का दृष्टिकोण

कबीर ने हमेशा समाज में महिलाओं के अधिकारों और सम्मान के लिए आवाज़ उठाई। उनका एक प्रसिद्ध दोहा हैः

"*नारी नर की खाल है, नारी नर का रंग।*

नारी नर का बंधन है, नर नारी का संग"।

इस दोहे के माध्यम से कबीर ने यह संदेश दिया कि नारी और पुरुष दोनों एक जैसे हैं और उनके बीच कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए। कबीर का यह विचार उस समय के पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं की स्थिति के खिलाफ एक सशक्त आवाज था। वे यह मानते थे कि पुरुष और महिला दोनों को समान अधिकार मिलना चाहिए और समाज में महिलाओं को सम्मान का स्थान मिलना चाहिए[14]। आज के समय में, जहाँ महिला सशक्तिकरण और समान अधिकारों की बात प्रमुखता से की जा रही है, कबीर के विचार बहुत प्रेरणादायक हैं। उनका यह दृष्टिकोण आज भी महिलाओं के खिलाफ हो रहे भेदभाव, शोषण और हिंसा के खिलाफ जागरूकता फैलाने में मददगार हो सकता है[15]। कबीर के विचार यह सिखाते हैं कि महिलाओं को हर क्षेत्र में समान अवसर मिलना चाहिए और उन्हें समाज में उनका उचित स्थान मिलना चाहिए।

निष्कर्ष: कबीर का साहित्य केवल उनके समय के लिए ही नहीं, बल्कि वर्तमान समाज के लिए भी उतना ही प्रासंगिक है। उनके विचार जाति-पांति, धर्म, और अंधविश्वास से ऊपर उठकर मानवता को अपनाने की प्रेरणा देते हैं। कबीर का साहित्य केवल उनके समय का ही नहीं, बल्कि आज के समाज का भी आईना है। उनके विचारों में समानता, धर्मनिरपेक्षता, महिला सशक्तिकरण, और भ्रष्टाचार के खिलाफ एक मज़बूत संदेश है जो आज भी समाज को जागरूक करने और

सुधारने में मदद कर सकते हैं। कबीर के साहित्य का यह विश्लेषण हमें यह समझने में मदद करता है कि कैसे उनके विचार आज भी हमारे समाज में प्रासंगिक हैं और समाज के विभिन्न पहलुओं को बेहतर बनाने में सहायक हो सकते हैं। कबीर का संदेश आज भी हमें यही सिखाता है कि हम सभी एक जैसे हैं, धर्म के नाम पर नफरत नहीं होनी चाहिए, महिलाओं को बराबरी का दर्जा मिलना चाहिए और हमें अपने जीवन में सच्चाई और ईमानदारी से जीना चाहिए। यदि आज के समाज में कबीर के संदेशों को अपनाया जाए, तो अनेक समस्याओं का समाधान संभव है।

"साधु ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय। सार-सार को गहि रहे, थोथा देई उड़ाय"।

कबीर के इस दोहे के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि हमें उनके विचारों को आत्मसात करते हुए समाज में व्याप्त बुराइयों को समाप्त करना चाहिए और मानवता की सेवा करनी चाहिए।

संदर्भ सूची

1. शर्मा, आर. (2018). कबीर का साहित्य और समाज पर उसका प्रभाव, गंगा पब्लिकेशन, वाराणसी।
2. गुप्ता, पी. (2020). भक्ति आंदोलन में कबीर की भूमिका, भारतीय साहित्य परिषद, दिल्ली ।
3. वर्मा, एस. (2017). कबीर के दोहे, समाज सुधार का एक माध्यम, राजकमल प्रकाशन, लखनऊ ।
4. यादव, के. (2015). कबीर और भारतीय सामाजिक संरचना, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
5. त्रिपाठी, आर. (2016). धर्म, समाज और कबीर का दृष्टिकोण, विद्या निकेतन, बनारस ।
6. दुबे, एन. (2022). कबीर की भक्ति परंपरा और आधुनिक संदर्भ, नेशनल बुक ट्रस्ट, कोलकाता ।
7. सिंह, पी. (2014). कबीर, एक समाज सुधारक कवि, साहित्य अकादमी, जयपुर ।
8. जोशी, बी. (2018). कबीर की विचारधारा, जाति और पाखंड के विरुद्ध एक क्रांति, चेतना प्रकाशन, भोपाल ।
9. शुक्ला, डी. (2019). भक्ति युगीन साहित्य में कबीर की प्रासंगिकता, साहित्य सागर, नागपुर ।
10. पाठक, एस. (2021). कबीर की निर्गुण भक्ति और उसका प्रभाव, हिंदुस्तानी अकादमी, वाराणसी ।
11. पांडे, के. (2013). कबीर और तुलसीदासरू भक्ति काव्य की तुलना, विद्या प्रकाशन, कानपुर ।
12. श्रीवास्तव, जे. (2022). आधुनिक भारत में कबीर के विचारों की प्रासंगिकता, भारतीय साहित्य संस्थान, दिल्ली ।
13. गुप्ता, ए. (2015). कबीर के दोहे और जीवन मूल्य, ज्ञानदीप प्रकाशन, वाराणसी ।
14. ठाकुर, आर. (2017). कबीर की भाषा और व्याकरणिक संरचना, सह्याद्री प्रकाशन, इंदौर ।
15. द्विवेदी, आर. (2023). कबीर, सामाजिक चेतना का स्वरूप, भारतीय अध्ययन केंद्र, लखनऊ ।

◆ शोध छात्रा (हिंदी विभाग),
बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झाँसी, उत्तर प्रदेश
◆◆असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
बुंदेलखंड कॉलेज, झाँसी, उत्तर प्रदेश
◆◆◆असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
वसंत महिला महाविद्यालय, राजघाट,
वाराणसी ,उत्तर प्रदेश।

मुद्रक तथा प्रकाशक: डॉ.पी.लता, आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफिस लेन, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम -14 द्वारा संपादित तथा प्रकाशित; अबी प्रकाशन एन्ड प्री-प्रेस, करुमम्, तिरुवनन्तपुरम -2 में मुद्रित ।
Printed & Published by Dr.P.Letha, Arathi, T.C. 14/1592, Forest Office Lane, Vazhuthacaud, Thiruvananthapuram -14,
Printed at Abi Design & Pre-Press, Karumom, Thiruvananthapuram -2 & Edited by Dr. P. Letha